

• श्री श्रीगुरुगोराङ्गो जयतः •

✽

सर्वं पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

✽

धर्मः स्वसृष्टितः पुसां विश्वकृतेन तस्यासु यः ।



नोत्पावयेत् पति रति धम एव हि केवलम् ।

✽

अहेतुक्यप्रतिहता ययात्मानुप्रसीदति ।

✽

सर्वोत्कृष्ट धर्म हे वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।

भक्ति अधोक्षज की अहेतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।

किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो धम अर्थ सभी केवल बंचनकर ।

वर्ष १३

गौराब्द ४८१, मास— दामोदर ३०, वार—गर्भोदशायी
शुक्रवार, ३० कार्तिक, सम्बत् २०२४, १७ नवम्बर, १९६७

संख्या ५-६

श्रीहिन्दोलन-लीला-वर्णनम् (उत्तरार्द्धम्)

[श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठक्कुर विरचितम्]

दोला वेगाधिक्यकामो स्वपद्भ्यामाक्रम्यतां स्वावनत्युन्नतिभ्याम् ।

स्वं स्वं सर्वाः कौशलं दर्शयन्ती प्रेमानन्दं तुम्हिलं चक्रनुस्तौ ॥२०॥

श्रीराधाकृष्णने दोलाको ज्यादा वेगसे झुलानेकी इच्छासे पदयुगल द्वारा दोला पर आक्रमण कर अपनी अवनति और उन्नतिके द्वारा दोला-दोलन कौशल दिखलाकर सखियोंको प्रेमानन्दमें डूबो दिया । हँसते-हँसते उनके पेट फूल गये ॥२०॥

हिन्दोलाया रहसि विन्दमाने पर्यायेन द्वे दिशोस्तौ यदन्ती ।

प्राप्योर्द्ध्वाधः स्थायिनोः खेलतो सा यूनोः कान्तिः कोतुकं कापि तेने ॥२१॥

पश्चात् हिन्दोलाका वेग पर्यायक्रमसे दोनों ओर जाने लगा । वेगके दोनों अन्तको प्राप्त कर उपर्यधः स्थित क्रीड़ापर युवक युवतीकी (श्रीराधाकृष्णकी) शोभाने बड़ा ही

कौतुक उत्पन्न किया । अर्थात् हिन्दोलाके ऊपर श्रीराधाकृष्ण एक दूसरेके आग्ने-साम्ने बैठे हुए हैं । दोलाका वेग पर्यायक्रमसे दोनों ओर जानेके कारण श्रीराधा जिस ओर बंठी हुई है, उस ओर दोला ऊपर जानेसे श्रीराधाके नीचे श्रीकृष्ण आ जाते हैं और श्रीकृष्ण जिस ओर बैठे हुए हैं, उस ओर दोला ऊपर जानेसे श्रीराधा भी श्रीकृष्णके नीचे आ जाती है । ऐसे बार-बार दोलावेगसे दोलाके एक ओर ऊपर और दूसरी ओर नीचे होनेसे श्रीराधाकृष्ण भी बार-बार एक समय एक व्यक्ति के नीचे और दूसरी समय उसके ऊपर हो रहे हैं—ऐसा देखकर सखियों के मनमें किसी लीला विशेषकी याद आ जानेसे उन्हें बड़ी कुतुहलता होने लगी । वे अपने मन्द मुसकानयुक्त मुखको वस्त्र द्वारा अर्द्धाच्छादन कर तर्जनी द्वारा परस्परको दिखलाने लगीं ॥२१॥

राधा-हारं संस्पृशन् कृष्ण-वक्षश्चक्रे नृत्याभ्येकतो दिश्युदारम् ।

अन्यत्रास्थाः कञ्चुकीं श्लिष्यति स्म स्रक् तस्यापीत्याययुर्मोदमाह्वयः ॥२२॥

जब श्रीकृष्ण नीचे रहते हैं, उस समय श्रीराधाका हार श्रीकृष्णके वक्षस्थलको स्पर्शकर एक ओर नाचता है और जब श्रीराधा नीचे रहती हैं, उस समय श्रीकृष्णकी वैजयन्तीमाला श्रीराधाके कञ्चुकको स्पर्श कर दूसरी ओर नाचती है—ऐसा देखकर सखियोंने परम आनन्द प्राप्त किया ॥२२॥

अन्योऽन्याङ्गादर्शं दृष्टस्य-भासोरन्योऽन्यानालोकजक्लान्तिभाजोः ।

तद्दृष्ट्योन्मथ-श्वासभूमाभिमर्षादन्योन्यं संदृश्य तो हृष्यतः स्म ॥२३॥

श्रीकृष्णके मरकत-दर्पण सदृश अङ्गमें श्रीराधा अपने प्रतिबिम्बकी देखने लगीं, किन्तु श्रीकृष्णको देख नहीं सकीं । इसी प्रकार हेम-दर्पण सदृश श्रीराधातनुमें श्रीकृष्ण अपने प्रतिबिम्बको देखने लगे, किन्तु श्रीराधाको देख नहीं सकें । इस कारण दोनों अत्यन्त दुःखी हुए । पश्चात् दुःखके कारण दोनों जैसे ही दीर्घ श्वास छोड़ने लगे उस समय दोनोंके दर्पण सदृश अंग मलिन होनेसे दोनों अपने-अपने प्रतिबिम्बको देख नहीं सके, और दोनों एक दूसरेको देखकर परमानन्दित हुए ॥२३॥

इत्थं लीला वारिधिः कौतुकित्वादत्युद्रेकं रहंसो निर्विमाणः ।

पृष्ठाभृष्टात्तुङ्गपर्यन्तशाखा पत्रालीकां तां चकारेव भीताम् ॥२४॥

इस प्रकार लीलासमुद्र श्रीकृष्ण दोलावेगको अत्यन्त अधिक बढ़ाकर कुतुहलताके साथ स्वयं दोलाको भुलाने लगे । इससे दोलाके अत्यन्त ऊपर उठनेसे ऊँची कदम्बशाखा

के, पत्त श्रीराधाके पृष्ठदेशको स्पर्श करने लगे । श्रीराधा यह समझकर कि यह शाखा टूटकर गिरेगी, अत्यन्त भयभीत हुई ॥२४॥

मैवं मैवं माधिकं हन्तदोलेत्युक्ति तस्यास्तत्सखीनाञ्च शृण्वन् ।

स्मित्वा स्मित्वा वदंयन्नेव दोला जंघालत्वं माधवो भ्राजते स्म ॥२५॥

यह देखकर श्रीराधा और सखियाँ भयभीत होकर बार-बार कहने लगीं—“हे कृष्ण ! और मत भुलाओ, हे कृष्ण ! और मत भुलाओ ।” श्रीकृष्ण यह सुनकर निवृत्त होना तो दूर रहा बल्कि हँसते-हँसते अत्यन्त अधिक वेगको बढ़ाने लगे ॥२५॥

बन्धाद्वेणी विच्युता नावगुण्ठस्तस्थी मूर्द्धनि व्यस्तताभूषणानाम् ।

पादौ शाटी नाप्यधादित्यमुष्या वैयग्रचे हा जाहसीति स्म कृष्णः ॥२६॥

उससे व्यग्रताके कारण श्रीराधाकी वेणीका बन्धन खुल गया, मस्तकमें घूँघट नहीं रहा और सभी भूषण अस्त व्यस्त हो गए; हवासे भीतरी वस्त्र ऊपर उठेगा, ऐसा सोचकर श्रीराधा पदयुगल द्वारा जिस साड़ीको दबाए हुए थी, उसे भी वे दबाएँ नहीं रख सकीं । हाय ! हाय ! श्रीराधा की ऐसी अवस्था देखकर भी श्रीकृष्ण अत्यन्त हास्य करने लगे ॥२६॥

इत्थं स्वाधनोऽभृत्पतौ रंजसा तां वित्रस्ताक्षीमामनाद्भ्रंशयित्वा ।

स्वीर्यं कण्ठं ग्राहयामास मध्ये दोलाखट्व तां जग्राह दोर्भ्याम् ॥२७॥

श्रीराधिकाजी की ऐसी अवस्था देखकर श्रीकृष्ण अपने नयनोंको परितृप्त करने लगे और दोलावेग को क्रमशः पहले से अधिक बढ़ाने लगे । इससे श्रीराधाने भीत-नयना होकर अपने स्थानको छोड़कर श्रीकृष्णका कण्ठ-धारण किया । श्रीकृष्णने भी दोनों हाथों द्वारा श्रीराधाको ग्रहण किया । अर्थात् जिन हाथों द्वारा वे दोलारज्जुको धारण किये थे, उसे छोड़कर श्रीराधाको दोनों हाथों द्वारा आलिगन करते हुए केवल-मात्र पाँवके सहारे वैसे वेगपूर्ण दोलाके ऊपर अपनी कान्ताको वक्षस्थलमें धारण कर भूलने लगे ॥२७॥

एकीभूते चम्पकेश्वीवराभे मूर्त्ती यूनोरुदिगरम्यावभाताम् ।

संमर्दोत्थं सौरभं व्याशुवानं पारेस्वर्गं हन्त पद्मादिनासाः ॥२८॥

चम्पक ईन्दीवर सहस्र इस युवक-युवती की (श्रीराधाकृष्ण की) मूर्तियाँ निबिड़ संयोगके कारण एकीभूत हुईं और संमर्दनके कारण इन दोनों मूर्तियोंसे चम्पक और ईन्दीवर पुष्प जैसे सौरभ निकलकर स्वर्ग से परे वैकुण्ठ स्थित पद्मादियोंके नासा-ध्राग को भी प्राप्त किये । अर्थात् वह सौरभ सर्वत्र व्याप्त हो गया ॥२८॥

साम्यद्वेगा समन्ताद्धृताभृद्दोलाप्यारादागताभिः सखीभिः ।

राधा द्रागेवावरुह्याथ तस्यास्ताभिस्तत्तात् संलपन्ती ललाष ॥२९॥

उसके पश्चात् त्रिना अवलम्बनके दोलाके ऊपर स्थित श्रीराधाकृष्णको दूर से देख कर सखियोंने आकर दोलाको पकड़ लिया और वेग शान्त हो गया । श्रीराधा भी तुरन्त दोलासे उतर कर सखियोंके बीच प्रविष्ट होकर श्रीकृष्णने जो-जो विडम्बनाएँ की थीं, उनके बारे में कहने लगीं ॥२९॥

मुख्यास्वष्टास्वाद्य भूतामथालीमारोह्यास्यां तां सकृष्णां स्वयं सा ।

प्रेम्ना गायद्दोलयन्ती स चापि प्रेषान् दोले पूर्ववत्तामजेषीत् ॥३०॥

पश्चात् अष्ट सखियों में सर्वप्रधाना श्रीललिताको श्रीराधा कौशलसे दोलाके ऊपर श्रीकृष्णके निकट आरोहण कराकर स्वयं दोलाने लगीं और प्रेम पूर्वक गान करने लगीं । श्रीकृष्णने दोलाके ऊपर श्रीराधाकी जो अवस्था की, वही अवस्था उन्होंने श्री ललिता की भी की ॥३०॥

एवं प्रेषास्ता विशाखादिकाली- सान्द्रं दोलान्दोलमाप्य तस्याः ।

हिन्दोलातः सोऽवतीर्यैव सर्वास्वेकंकस्यामन्य हिन्दोलिकासु ॥३१॥

तासां द्वे द्वे सुन्दरीणां स्वदोर्भ्यां तत्रागृह्यारोह्यमह्याः प्रसह्य ।

भ्राम्यन्नेको दोलयत्ताः समस्ताः प्रेमाम्भोधेस्तस्य किं वास्त्यकृत्यम् ॥३२॥

इस प्रकार विशाखा आदिको दोलान्दोलनके लिए अवसर प्रदान कर श्रीकृष्ण हिन्दोलासे उतरे । पहले जिस हिन्दोला-श्रेणी की बात कही गई थी, उस एक-एक हिन्दोलाके ऊपर श्रीकृष्णने दो-दो सुन्दरियोंको बलपूर्वक भूमिसे अपने हाथों द्वारा उत्तोलन कर आरोहण कराया और अकेले ही असंख्य हिन्दोलाओं को भुलाते उनके ऊपर भ्रमण करने लगे । यदि कोई कहें कि बहुत कष्टसाध्य इस कार्यमें श्रीकृष्ण कैसे सफल हुए ? उसका उत्तर यही है कि श्रीकृष्णके लिए अकरणीय क्या है ? ॥३१-३२॥

तां सर्वास्तु स्व स्व हिन्दोलिकान्तस्तं चापश्यन् स्व स्व धयन्तं ।
नेतच्चित्रं गोकुलाधीश-सूनोरिच्छाशक्तेः कि पुनः स्यादशक्यम् ॥३३॥

श्रीकृष्णने सोचा कि प्रत्येक हिन्दोलिका के ऊपर स्थित गोपी युगलके बीचमें मैं भी रहूँगा; यह इच्छा पूर्ण हुई थी । क्योंकि हिन्दोलिका के ऊपर में स्थित प्रत्येक गोपी यह देखने लगीं कि श्रीमधुसूदन हमारे वदनकमल का पान कर रहे हैं । यह गोकुलेन्द्र-नन्दन के लिए आश्चर्य नहीं है, क्योंकि उनकी इच्छा शक्तिके लिए कुछ भी अशक्य नहीं है ॥३३॥

एवं तत्रैवास्ति हिन्दोलनाब्जं वृन्दोद्दिष्टं प्रेयसीभिर्मुकुन्दः ।

आरुह्य तत् कर्णिकास्थोपवर्हालम्बो दोषादिनष्टराघो रराज ॥३४॥

वहाँ एक हिन्दोलनाब्ज अर्थात् कमलाकृति हिन्दोला थी । श्रीवृन्दादेवीके दिखलाने मात्र से श्रीकृष्णने प्रेयसियोंके साथ उसके ऊपर आरोहण किया । हिन्दोलनाब्जके कर्णिकामें पूर्ववत् वृन्तहीन कुसुमके ऊपर दिव्य वस्त्र, आस्तरण (अलङ्कार) और फूलों का उपाधान (तकिया) था । श्रीकृष्ण कर्णिकाके ऊपर श्रीराधाके कन्धेपर बाएँ हाथको रखते हुए विराजित हुए ॥३४॥

अष्टबाल्योऽन्यष्टत्रयान्तरस्थास्तत्तात्वाह्ये षोडशाङ्गो विभान्त्यः ।

वृन्दानीत स्वादुखजूर-जम्बु-द्राक्षाः प्राशनन् कान्त-भुक्तावगिष्टाः ॥३५॥

अष्टदलके ऊपर ललितादि प्रधाना पाठ सखियाँ बैठीं और उसके बाहर षोडशदल के ऊपर षोडश सखियाँ बैठी । हिन्दोलनाब्ज पर सखीसह श्रीराधाकृष्णको बैठे हुए देख कर परमानन्दसे वृन्दादेवीने खजूर, जम्बु (जामुन), अंगूर आदि नाना प्रकार के फल लाकर श्रीराधाकृष्णके सामने रख दिया । श्रीराधाकृष्णके खानेके पश्चात् जो षवशिष्ट था, उसे सखियोंने ग्रहण किया ॥३५॥

पीयूषान्तगवमर्बङ्गपस्य प्रागेवाभूत पानकादेः प्रगणाम् ।

अ ते हेमशोभिताम्बूलवीटी वृन्दान्याऽन्य प्रीतिदानाभियोगः ॥३६॥

इन लोगोंने खजूरादि फल खाने के पहले ही हिन्दोलनाब्ज पर बैठकर ही अमृत-गवंहारी पानक (सरबत) आदि पान किया था । भोजन के पश्चात् स्वर्णकान्ति ताम्बूल-वीटिको परस्पर प्रीतिपूर्वक ग्रहण करने लगे (अर्थात् सखीगण और श्रीराधा-कृष्णने परस्परको परस्पर ताम्बूल वीटि प्रदान की) ॥३६॥

नाम्दीवृन्दे विंदतः स्म प्रमोदं नोदं पाण्योर्दोलिनाब्जे ददस्यो ।

दास्योऽप्यास्योल्लाससमापद्य सद्यो नानागानारम्भशम्भा बभूवुः ॥३७॥

हिन्दोलनाब्जको भुलानेके लिए नान्दीमुखी और वृन्दा दोनों ओर रहकर पहले की तरह भुलाते-भुलाते परमानन्दको प्राप्त हुए । उसको देखकर दासियोंके मुखपर उल्लास के चिह्न लक्षित हुए । वे परमानन्दसे नाना प्रकारके गान करने लगीं ॥३७॥

दोलान्दोल क्रीयया ताः समस्ताः जित्वा प्राप्ताव्लेष-चुम्बनादिरत्नः ।

साद्धं कान्तामण्डलेनावरुह्य प्रागात् प्रेषान् काननात् काननाय ॥३८॥

श्रीकृष्णचन्द्रने दोलान्दोलन-लीला से सभी सखियोंका जय करते हुए आलिङ्गन, चुम्बन आदि रत्न प्राप्त किये । पश्चात् दोलासे उतरकर कान्ताओंके साथ एक बन से दूसरे बनमें भ्रमण करने लगे ॥३८॥

राधास्योत्था मुद्रिता या स्मित श्रीस्तस्यास्तत्र स्मारकानेव दृष्ट्वा ।

यूथ्यालीनां कोरकान् स व्यचैषोत् हृद्याधातुं तान् खनः संरवस्य ॥३९॥

बन भ्रमण कालमें वर्षाजात यूथी-पुष्पके कलियों को देखकर "श्रीराधाके श्रीमुख में जो हास्य उत्थित होकर आलस्य के कारण पुनः मुद्रित होता है, वही शोभाको ये यूथी की कलियाँ मेरे मन में उदय करा रहीं हैं"—ऐसी चिन्ता कर श्रीकृष्णने यूथी कुसुम चयन कर उनकी माला गूँथ कर हृदयमें धारण किया अर्थात् श्रीकृष्णने यूथी-कलियों की माला धारणके छलसे श्रीराधाके मृदु हास्यको हृदयमें धारण किया ॥३९॥

खहेगान्मेघः कृष्ण गात्रच्छवित्वं विद्युत्सामङ्ग भासा-ततित्वम् ।

भूमे रुदिरिन्द्रगोपैः समूढैः पादालक्ताभ्यक्तताव्यक्तमासीत् ॥४०॥

आकाशके नवजलधर जैसी श्रीकृष्णकी अङ्गकान्ति है और मेघोंके साथ जो विद्युत् श्रेणी चमक रही हैं वे श्रीगोपिकाओं की अङ्गकान्ति हैं । इन्द्रगोप नामक रक्तवर्ण जो वर्षा-कीट भूमितलमें वर्तमान हैं, वे श्रीगोपिकाओंके श्रीवरणोंके अलक्तक की तरह प्रतीत होने लगे ॥४०॥

कृष्णाभ्रेणानुलघनरसैः सर्वतो वृष्यमाण-

रत्युत्फुल्लाः किल सुमनसः सर्ववत्यो लताश्च ।

तत्त्वस्यात्थोऽपसमसुषमाः शं विरायान्वभूवन्-
वर्षाहर्षं वनमपि यती हर्षवर्षास्वमाक्षीत् ॥४१॥

जब श्रीकृष्ण मेघ अतुल घनरस सर्वत्र वर्षण करने लगे, तब उस वर्षण द्वारा सुमनस (मालती) और लताएं अत्यन्त प्रकुल्लित और पर्ववती हुईं । और उन-उन वृक्षों की फल श्रेणियाँ भी असीम सुपमायुक्ता होकर बहुत समय तक स्थायी सुखका अनुभव करने लगीं । अहो ! इस घनरस वर्षणसे वर्षाहर्ष वन भी हर्ष-वर्षामें डूब गया । अर्थात् (श्लेषार्थमें) श्रीकृष्णरूप घन (मेघ) जब अपार घन-रस (शृंगार-रस) सर्वत्र वर्षण करने लगे, उस समय श्रीकृष्णकी प्रशस्त सखियाँ सुमना अर्थात् अनुरागिनी, प्रफुल्लिता और पर्ववती (उत्सववती) होकर दीर्घकाल तक सुखानुभव करने लगीं । उससे वर्षाहर्ष वन भी हर्षवर्षा में मग्न हुआ ॥४१॥

श्रेयः और प्रेयः

दो प्रकारके पथ हैं—(१) श्रेयः पथ और (२) प्रेयः पथ । कभी-कभी श्रेयः बात प्रेयः की तरह प्राकृत हृत्कर्णरसायन नहीं भी हो सकता है । किन्तु प्रेयः बात सर्वदा ही प्राकृत इन्द्रिय-तृप्तिकर है । अधिकांश श्रोता यही चाहते हैं कि वक्ता उनके रुचिके अनुकूल बातें ही कहें । किन्तु श्रेयः पन्थी व्यक्ति सोचते हैं—‘यद्यपि उस समय मेरे लिए अरुचिकर है, तथापि मैं निरपेक्ष सत्य बात ही सुनूँगा।’ मनुष्योंकी भिन्न-भिन्न रुचि है । कुछ व्यक्ति भावुक श्रेणीके हैं, कुछ व्यक्ति विचारक हैं, कुछ व्यक्ति सन्देहवादी या संशयात्मा हैं और कुछ व्यक्ति दूसरे प्रकारके रुचियुक्त हैं । हम जिस प्रकारके समाज या पारिवारिक अवस्थामें पालित हुए हैं, हमारी उसी प्रकारकी चिन्तास्रोत या रुचिमें ही झुकाव देखा जाता है । दूसरी बातें हमारे निकट

बड़ी ही विरुद्ध (revolutionany) अश्रुतपूर्व और आश्चर्यजनक मालूम होती हैं । किन्तु यदि हम मंगल चाहते हैं तो हमें धैर्यके साथ इन बातों को सुनना चाहिए और श्रेयः पथ ग्रहण करना ही आवश्यक है या तात्कालिक सुखदायी प्रेयः पथ ग्रहण करना ही हमारे लिए परम कर्त्तव्य है, इस पर विचार करना चाहिए । यदि हम श्रेयः पथ चाहते हैं, तो हमें असंख्य जनमत परित्याग करके भी धैर्यवाणीका ही श्रवण करना चाहिए । श्रुतिमें कहते हैं—“तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि श्रोत्रीयं ब्रह्मनिष्ठम् ।” श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

“तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥”

वैष्णवको भी गुरु बनाया जा सकता है, और अवैष्णवको भी गुरु कहा जा सकता है। किन्तु शास्त्रोंमें कहते हैं—

“अवैष्णवोपदिष्टेन मंत्रेण निरयं ब्रजेत् ।

पुनश्च विधिन। सम्यग् ग्राहयेद् वैष्णवाद्गुरोः॥”

अर्थात् अवैष्णव द्वारा उपदेश किये गये मंत्रसे नरकमें पतित होना पड़ता है। अतएव वैष्णव गुरु से विधिपूर्वक पुनः मंत्र ग्रहण करना चाहिए। इसलिए हम ऐसे गुरुका आशय ग्रहण करेंगे, जो सौमेंसे सौ भाग ही [१०० प्रतिशत] भगवानकी सेवामें नियुक्त हैं। नहीं तो मैं भी उनके आदर्शसे सौमेंसे सो भाग या पूरी तरह हरिसेवामें नियुक्त नहीं हो पाऊँगा। श्रीचैतन्य चरितामृतमें कहा गया है—

“आपनि आचरि धर्म जीवेरे शिखाय ।

आपने ना कंले धर्म शिखान न जाया।”

Platform Speaker (रंगमंच के वक्ता) or Professional Priest (व्यवसायी पुजारी) कदापि गुरु नहीं हो सकते। मैंने विज्ञापन में पढ़ा कि भाइदार के कार्यमें भागवत पाठकी अपेक्षा अधिक अर्थ मिलता है। मैंने तुरन्त भागवत पाठके कार्यको छोड़कर भाइदारके कार्यके लिए आवेदन पत्र पेश किया। ऐसे कार्यसे कदापि आत्मकल्याण नहीं होता। यदि मनुष्य सर्वदा हरिभजन न करें, तो वे भगवानके नामके बल पर इतरविषयोंमें प्रवृत्त होनेकी चेष्टा ही कर रहे हैं—यही जानना चाहिए। यह ‘नाम-बल पर पापवृद्धि’ एक महान् अपराध है। जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्यके लिए बहुतसे कार्य

करना आवश्यक है—(जैसे दस मिनट घूमनेके लिए, पन्द्रह मिनटके भोजनके लिए, बीस मिनट लोगोंसे बातचीत करनेके लिए, इत्यादि), उसी प्रकार भागवत पढ़ना भी उन बहुतसे कार्योंमें एक कार्य है। यदि भागवत सेवा ही उनका कार्य है, तो वे प्रत्येक पदचालनमें, प्रत्येक आसमें, प्रत्येक निश्वास प्रश्वास के साथ हरिसेवा करेंगे।

“Stipend holder or a contractor cannot explain the Bhagvat. First of all, refrain from approaching a professional priest. See whether he devotes his time fully to the Bhagavat or not.”

अर्थात् वेतनभोगी व्यक्ति या ठेकेदार भागवत नहीं समझ सकते। हमें सर्वप्रथम व्यवसायी पुजारियोंसे दूर रहना चाहिए। हमें यह देखना होगा कि वह अपने पूरे समयको भागवतके लिए देता है या नहीं। परब्रह्ममें निष्णात व्यक्तिका सभी समय ही सेवामय है। श्रील रूप गोस्वामीजीने कहा है—
“सजातीयाशये स्निग्धे साधो सङ्गः स्वतो वरे ।
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह ॥”

पुराणतीर्थ होनेसे ही किसी व्यक्तिने भागवतके आदर्शके अनुसार अपने जीवनको गठित किया है, ऐसी बात नहीं है। स्कूल-कॉलेजके शिक्षक या अध्यापकके साथ जो सम्बन्ध है, भागवत व्याख्याता के साथ वैसा सम्बन्ध नहीं है। जो अध्यापक छात्रों को बड़े सुन्दर रूपसे पढ़ा सकते हैं वे उत्तम अध्यापक माने जाते हैं। उनका जीवन या चरित्र कैसे भी हो, उससे कोई परवाह नहीं है। भागवत व्याख्याकारी

व्यक्तिके लिए ऐसा उदाहरण नहीं चल सकता जो 'भागवत-व्याख्याता' होगा, उसे स्वयं 'भागवत' होना आवश्यक है। अर्थका लोभ, प्रतिष्ठाका लोभ या दूसरी कोई अभिलाषा होनेसे वे लोक-चित्तरञ्जक भागवत-पाठक होकर भी 'भागवत' से कोसों दूर हैं। उनके मुखसे भागवत श्रवण कर भागवत के वास्तव मत्यके प्रति दूसरोंका चित्त आकृष्ट नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

“सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायणाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवगंवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुकमिष्यति ॥”

यहाँ 'सतां प्रसङ्गात्' ध्यान देने योग्य है। 'हृत्कर्ण-रसायन' कहनेसे बहिर्मुख इन्द्रिय तर्पण-जनक नहीं है, परन्तु सेवोन्मुख व्यक्तियोंके चिदिन्द्रिय रसायन या सेवा लौल्यपर है।

प्रायः साठ वर्ष पहले पुरीधाममें गोपीनाथमिश्र नामक एक उत्कल पण्डित थे। उन्होंने श्रीमद्भागवत पर विशेष अधिकार प्राप्त किया था। उनके निकटसे शिक्षा लाभ कर एक प्रसिद्ध परम भागवतने भागवत पाठे कर विद्ध-भक्ति स्रोतके गतिको परिवर्तन कर जगतमें शुद्धा भक्तिका प्रचार किया है। उन्होंने ही श्रीजगन्नाथमन्दिरमें श्रीमन्महाप्रभुके पादपीठके निकट भक्तिमण्डपके नीचे शुद्ध भगवदालोचनाकी भित्ति स्थापना की थी। वर्तमान जगतमें उनके आनुगस्थमें ही भागवत पाठ और हरिकीर्तन संभवपर हुआ है। कपट-समाजी अपने-अपने असत् अभिप्रायको लेकर उनकी सेवा नहीं कर सकते।

श्रीमद्भागवत वैष्णवोंके पास पढ़ना होगा। श्रील स्वरूप गोस्वामीजीने कहा है—'जाह भागवत पढ़ वैष्णवेर स्थाने।' जो व्यक्ति स्वयं 'श्रीमद्भागवत' नहीं है, उनके मुखसे 'श्रीमद्भागवत' कीर्तित नहीं हो सकता। वह व्यक्ति अपने मुखसे श्रीमद्भागवत कीर्तित होता है—ऐसा कहकर दूसरोंके मनमें भ्रममात्र उत्पन्न करता है। वह स्वयं बन्धित है, अतएव दूसरोंको भी बन्धित करता है। बङ्गदेशमें अनेक व्यक्ति मछली खाते हैं, भागवत-निन्दित स्त्री-सङ्ग, गृहव्रतघर्म, और नानाप्रकारके कुकर्म करते हैं; तथापि वे अपनेको 'भागवत पाठक' कहते हैं। ऐसे व्यक्तियोंकी जिह्वा पर किस तरह अभिन्न भगवद्बस्तु 'भागवत' नृत्य कर सकते हैं? जिनका चरित्र खराब है, जिनमें कामकी चिन्ता प्रबल है, जिन्हें प्रतिष्ठा और अर्थकी आवश्यकता है, वे कदापि श्रीमद्भागवत नहीं पढ़ते—श्रीमद्भागवत पढ़नेकी छलना कर आत्मेन्द्रिय-तर्पणमात्र करते हैं। बल्कि इस श्रेणीके व्यक्ति ही कहते हैं—“जो व्यक्ति सर्वदा ही 'भागवत' पढ़ते हैं, उनकी हरिसेवाके अर्थको बन्द कर दो, रेलका किराया भी बन्द कर दो।” परन्तु भागवतोंकी ही सभी व्यक्ति सेवा करेंगे। यदि मैं सौभाग्यवान हूँ, तो जो गुरुदेव सर्वक्षण हरिभजन करते हैं, उनका चरणाश्रय ग्रहण करता। 'पण्डित कौन हैं?' इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीमद्भागवतमें (भा० ११।१६।४१) कहते हैं—“पण्डितो बन्ध-मोक्षवित्”।

हम कई समय ऐसा सोचते हैं कि हमारे भागवत पाठ कर मन्त्र द्वारा ठाकुर स्थापना कर जीविका निर्वाह करनेकी क्रियाकी जो निन्दा करते

हैं—जो वास्तवमें भागवत पढ़ते हैं, भगवानकी सेवा करते हैं, जगतके लोगोंको “शुद्ध वधुव” बनाते हैं, हम क्यों नहीं उनका गला घोटें ? हमारे गहित कार्यके समर्थनमें उत्तर न दे पाकर क्यों नहीं कहें कि उन्हें भी भिक्षा करनी पड़ती है और उन्हें अर्थकी आवश्यकता होती है ? परन्तु ऐसी चिन्ता करना अनुचित है। जो वास्तवमें भागवत पढ़ते हैं, भगवानकी सेवा करते हैं, उन्हें सब कुछ देना चाहिए, सभी वस्तु उनकी ही है, वे हमारे समान भोग नहीं करते अथवा ठाकुरजीकी सेवा-छलसे आत्मवञ्चना या परवञ्चना नहीं करते। वे भगवत-सेवाकी वस्तुओंको प्रापञ्चिक समझकर त्याग कर फल्गु-वैरागीके जड़-प्रतिष्ठाका संग्रह भी नहीं करते।

दूसरोंके निकट निरपेक्ष सत्य बात कहनेसे पश्चात् वह दूसरोंके निकट अप्रिय होगा, इस भयसे यदि मैंने सत्य-कथा कीर्तन परित्याग किया, तो मेरे द्वारा श्रौतपन्था परित्याग करना और अश्रौत पन्था ग्रहण करना हुआ—मैं अवदिक और नास्तिक हुआ—सत्यस्वरूप भगवानमें मेरा विश्वास नहीं हुआ। श्रीचैतन्यचरितामृतके प्रारम्भमें ही कृष्ण दास कविराज गोस्वामी कहते हैं—

“ततो दुःसङ्गपुत्रसृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ।

सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यसंमुक्तिभिः ॥”

(भा० ११।२१।२६)

गुरु कदापि प्रेयः पथ स्वीकार नहीं करते, वे सर्वदा ही श्रेयः पन्थी हैं। उनके गुरुके निकटसे

उन्होंने जिस प्रकार सत्यपथ पर चलनेकी शिक्षा पाई है, वे वही दूसरोंसे कहते हैं। गुरुसे यदि कोई कहें—“गुरुदेव ! मैं शराब पीना चाहता हूँ।” गुरु यदि ऐसा करने की अनुमति न दें, तो हम “इन्होंने हमारे मनके रुचि अनुकूल वस्तु न दी” कहकर उन्हें गुरुपदसे हटाने की चेष्टा करते हैं। जो गुरु मेरे इस प्रकारके इन्द्रिय तर्पण रूप यज्ञमें ईन्धन दे सकते हैं, उन्हें ही हम गुरु रूपमें वरण करते हैं। हम कई समय अपने प्रेयोलाभके लिए ही गुरु करते हैं, मंगल या श्रेयोलाभके लिए नहीं। वर्तमान समयमें गुरु-करण एक श्रेणी के व्यक्तियोंमें नाई या धोबी रखने की तरह एक लौकिक या कौलिक क्रियामात्र है और दूसरे श्रेणीके व्यक्तियोंके निकट एक फैशन या लोक-रीति मात्र है।

सत्य जानने मात्रसे उसमें निष्ठायुक्त होना परमावश्यक है। हमारे जीवनमें जिनका जितना समय बाकी है, उसका थोड़ा भी काल विषय कार्यों में न लगाकर हरि भजनमें ही नियुक्त करना चाहिए। खट्वांग राजाने अपने जीवनके अवशिष्ट मुहूर्त कालको और अजामिलने केवलमात्र मृत्यु समयको हरिभजनमें नियुक्त कर अपना अभीष्ट प्राप्त किया था। हम यह कह सकते हैं कि हमारा कर्तव्य कुछ बाकी है। किन्तु यह जानना चाहिए कि “विषयः खलु सर्वतः स्यात्।” दूसरे-दूसरे कर्तव्यों को सभी जन्मोंमें ही किया जा सकता है, किन्तु जीवों का एकमात्र कर्तव्य हरिभजन इस मनुष्यजन्म को छोड़कर दूसरे जन्मोंमें नहीं हो सकता।

शिवानन्द भट्टाचार्य नामक एक शक्ति उपासक

ब्राह्मण थे। रामकृष्ण नामक उनके एक पुत्र थे। भट्टाचार्यजी ने दुर्गोत्सव निकट जानकर रामकृष्ण को बकरे-भैंस आदि शक्तिपूजाके आवश्यक द्रव्य खरीदने के लिए दूसरे स्थानमें भेजा था। जब रामकृष्ण उन सब द्रव्यों को लेकर घर लौट रहे थे, तब रास्ते में उनको श्रील नरोत्तम ठाकुरसे भेंट हुई। जब नरोत्तमजी ने उनसे उन द्रव्यों के बारे में पूछा, तो रामकृष्णने निष्कपट होकर नरोत्तम ठाकुरसे पित्रादेशकी बात कही।

नरोत्तम ठाकुरके उपदेशसे रामकृष्ण का चित्त पलट गया। उन्होंने बकरियों और भैंसोंको छोड़ दिया। वे नरोत्तम ठाकुरकी कृपा प्राप्त कर घर लौटे। भट्टाचार्यजी पूजाके द्रव्यों की आशा से बैठे हुए थे। उन्होंने सोचा था कि पुत्र इस बार मां की पूजाके लिए उत्तम पशु ले आवेगा। किन्तु पुत्रको खाली हाथ आते देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा, “रामकृष्ण, क्या तुम मां की पूजा के लिए पशु लाए हो?” रामकृष्ण ने कहा, “पिता! मैंने बकरे-भैंसादि खरीदा था, किन्तु उन्हें रास्ते में ही छोड़ आया हूँ। आज मैं एक परमवैष्णव की कृपा प्राप्त कर धन्य हो गया।” ऐसी बात से वृद्ध भट्टाचार्यजी को कितना क्रोध हुआ होगा, इसका अनुमान सभी लगा सकते हैं। भट्टाचार्य ने क्रुद्ध होकर कहा—“रामकृष्ण! आज तुमने मेरा आदेश-उल्लंघन किया। मां की पूजामें तुमने विघ्न उपस्थित किया, और सभी अर्थ को पानी में विसर्जन कर दिया। तुमने ब्राह्मणके पुत्र होकर वैष्णवका शिष्यत्व ग्रहण किया। हम और

समाजमें मुख दिखलाने लायक नहीं रहे। तुम किसी शाक्त-ब्राह्मणको वैष्णव समझकर उसके शिष्य होने से कोई बात नहीं थी। तुमने आज अब्राह्मण को गुरु बनाया। इसकी अपेक्षा और अधिक अपमान की बात क्या है? तुमने हमारे मुखमें आज काली पोत दिया। तुम कुलाङ्गार हो गये हो। मां के कोप से सर्वनाश हो जायगा।”

रामकृष्णको सत्य बात सुनने का अवसर मिला था। इसलिए उन्होंने नरोत्तम ठाकुरके मुखसे सत्य बात सुनकर उसी क्षण जागतिक कर्तव्यों को अत्यन्त क्षुद्र और नगण्य जानकर परित्याग कर दिया और एकमात्र हरिभजनमें नियुक्त हो गये।

हमारे निश्वासका विश्वास नहीं है। हमें अपने मङ्गलके लिए अभी से ही चेष्टा करनी चाहिए। यदि मैं मंगल चाहता हूँ, तो मेरे मंगल की प्रतिकूल कामना करनेवालों की बात नहीं सुनूँगा—

“गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् ।

पिता न स स्यात्जननी न सा स्यात् ॥

देवं न तत्स्यान्न पतिश्व स स्यात् ।

न मोक्षयेद् यः समुपेत-मृत्युम् ॥”

(भा० ५।५।१८)

अर्थात् वह गुरु-गुरु नहीं हैं, वह स्वजन स्वजन नहीं हैं, वह पिता-माता पिता-माता नहीं हैं, वह पति पति नहीं है, वह विधि विधि नहीं है, जो समुपस्थित मृत्यु से हमारा उद्धार नहीं कर सकें।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(विज्ञान)

१—सन्तापका मूल कारण क्या है ?

गन्धक, लौह (लोहा) आदि धातुके संयोगसे सभी पर्वत टूट जाते हैं, पृथिवी काँपने लगती है और बन्दूकसे अस्त्र सभी निकलकर बड़े-बड़े कार्य करते हैं। इन सभी कार्योंमें चेतनकी प्रेरणा कहाँ है ? * * * यदि सन्तापको ही सभी संचालनका कारण कहा जाय, तो भी चेतनकी प्रेरणाके बिना कोई भी कार्य संभवपर नहीं है। सन्ताप क्या पदार्थ है ? विशेष रूपसे विचार कर यह कहा जा सकता है कि सन्ताप एक गुण है। जब अन्तःकरणमें किसी वृत्तिका विशेष संचालन हो, तब ही सन्ताप देहमें प्रकाशित होता है। कामकी अधिकता से ज्वर होकर शरीरमें जलन पैदा होता है। सभी प्रकारके प्राकृत पदार्थोंमें जिस उत्तापकी उपलब्धि होती है, वह केवल चेतन-पदार्थकी क्रिया का फल कहा जा सकता है।”

—त. सू. २२ वाँ सूत्र

२—क्या युक्ति ही जड़ विज्ञानके आविष्कारका मूल नहीं है ? क्या मानव प्रकृति इन्द्रियज-ज्ञानमें आबद्ध रहकर तृप्त हो सकती है ?

युक्तिद्वारा ही सभी मानस और जड़-विज्ञानका आविष्कार होता है। जड़ विज्ञान कई प्रकार के हैं। जैसे—जड़ गुण विज्ञान (Science of matter and motion) चौम्बक विज्ञान (Magnetism)

वैद्युतिक विज्ञान (Electricity), आयुर्वेद-विज्ञान (Medicine), देह विज्ञान (Physiology), दृष्टि विज्ञान (Optics), सङ्गीत विज्ञान (Music), तर्क शास्त्र (Logic), मनस्तत्त्व (Mental Philosophy) आदि। द्रव्य गुण और द्रव्य शक्तिके विज्ञानसे जितने प्रकारके शिल्प और कारीगरी (Art and Manufacture) का आविष्कार हुआ है। विज्ञान और शिल्प परस्पर सहायता कर बड़े-बड़े कार्य करते हैं। धूमयान (Railway), विद्युत वात्ताविह (Telephone), अणुवपोत (Ships) और मन्दिर तथा गृहनिर्माण (Architecture)—ये सभी इन्द्रियार्थ ज्ञान और तत्प्रेरित कर्म हैं। देश ज्ञान अर्थात् भूगोल समाचार और काल ज्ञान अर्थात् अब्दबोध (Geography and Chronology), ज्योतिष (Astronomy) आदि सभी ही इन्द्रियार्थ ज्ञान हैं। पशुवृत्तान्त ज्ञान (Zoology) अथवा विज्ञान (Minerology), और अस्त्र-चिकित्सा आदि सभी ही इन्द्रियार्थ ज्ञान हैं। जो व्यक्ति इन सबमें आबद्ध रहना चाहते हैं, वे ऐसे ज्ञानको साक्षात् ज्ञान या (Positive knowledge) कहते हैं। मानव-प्रकृति केवल इन्द्रियज साक्षात् ज्ञानमें सीमित रहना नहीं चाहती। अतएव वह उन्नत उन्नत ज्ञानका अधिकार प्राप्त करती है।”

—चं. शि. १।३

३—सारग्राही व्यक्ति विज्ञान किसे कहते हैं ?

“वैष्णव लोग विषय ज्ञानके यथार्थ संस्थापन क्रियाको विज्ञान कहते हैं। जो व्यक्ति जड़-प्रकृतिके अनुसार जड़ज्ञानकी उन्नति करनेमें लगे हुए हैं, वे जड़ोन्नतिकी चेष्टा कर वैष्णवोंकी चिदुन्नतिका कुछ अंशोंमें अप्रत्यक्षरूपसे उपकार करते हैं।”

ज. ध. ६ म अ.

४—किस धर्ममें चिद्विज्ञानका पूर्ण अनुशीलन होता है ?

“आधुनिक धर्मोंमें भक्ति-विज्ञान देखा नहीं जाता। आर्यंबुद्धि द्वारा जिस सनातन धर्मका उदय हुआ है, उसमें वैष्णव-तत्त्व सर्वश्रेष्ठ है। अतएव केवल वैष्णव-धर्ममें ही भक्ति विज्ञानकी सम्भावना है। श्री जीव गोस्वामीके षट् सन्दर्भ और श्रीरूप गोस्वामीके भक्तिरसामृत सिन्धुमें भक्ति विज्ञानकी विवेचना विशेषरूपसे की गई है।”

—प्रे. प्र. ६ वाँ प्र.

५—विज्ञान किस वस्तुकी सेवामें नियुक्त होने पर जगतका सर्वश्रेष्ठ उपकार होता है ?

“शिल्प विद्या और विज्ञान विद्याको उन्नत कर तत्त्वविद्गणोंकी सेवा करना ही शिल्पियोंका और वैज्ञानिकोंका कर्त्तव्य है। आत्मतत्त्व अत्यन्त गूढ़ है। जो व्यक्ति इसकी आलोचनामें लगे हुए हैं, उन्हें साधारण शिल्प-विज्ञानादियोंमें आबद्ध रहनेका अवसर नहीं है। इसलिए उनके शरीर-निर्वाही सभी कार्योंकी पूर्तिके लिए दूसरे लोगोंको चेष्टा करना उचित है। क्रमोन्नतिवादी अपना-अपना कार्य करें। उससे उनका और जगतका दोनोंका ही

मंगल होगा। वे अनधिकार चर्चापूर्वक आत्मतत्त्व के गुण-दोष व्याख्या करनेकी चेष्टा न करें। वे अच्छे मनुष्य होकर कार्य करें। इससे आत्मज्ञानी उन्हें निरन्तर आशीर्वाद प्रदान करेंगे।”

—‘धर्म और विज्ञान’ स. तो. ज ७।७

६—विज्ञान, समाज और शिल्प किस समय सर्वोन्नत होते हैं ?

“जब कर्म भक्तिका यथार्थ अनुगत हो, तब वह कर्म ‘कर्म’ न कहलाकर ‘भक्ति’ ही कहलाता है। जब तक कर्म अपने नामसे परिचित है, तब तक वह भक्तिके सम स्पर्द्धितत्त्वरूपसे अपनी ही बढ़ाई की चेष्टा करता है। विज्ञान, समाज और शिल्प इनकी उन्नति चेष्टाको कर्म अपना तत्त्व कहकर व्याख्या करता है। किन्तु जब कर्म भक्तिमें परिणत हो जाता है, तब विज्ञान, समाज और शिल्प और भी उज्ज्वल होकर उन्नत हो जाते हैं।”

—त. वि. १ म अनु. ६-१२

७—सारग्राही वैष्णव किस प्रकारके धनविज्ञान शास्त्रमें पारदर्शी हैं ?

“शारीरिक और मानसिक जितने प्रकारके भी विज्ञान शास्त्र हैं एवं शिल्प शास्त्र और भाषा विज्ञान, व्याकरण, अलङ्कारादि जो भी शास्त्र हैं—ये सभी ही ‘अर्थ शास्त्र’ हैं। इन सभी शास्त्रों द्वारा कोई न कोई शारीरिक, मानसिक, सांसारिक या सामाजिक उपकार होता है। इस उपकारका नाम ‘अर्थ’ है। उदाहरणके लिए—चिकित्सा शास्त्र द्वारा आरोग्यरूप अर्थ पाया जाता है। गीत शास्त्र-द्वारा कर्ण और मनसुखरूप अर्थ पाया जाता है।

प्राकृत तत्त्व (पदार्थ) विज्ञान द्वारा कई अद्भुत यन्त्रोंका निर्माण होता है। ज्योतिष शास्त्र द्वारा काल-निर्णयरूप अर्थ प्राप्त होता है। इस प्रकार जो व्यक्ति अर्थ शास्त्रका अनुशीलन करते हैं, वे अर्थवित् पण्डित हैं, वराश्रमात्मक धर्मके संस्थापक स्मृति शास्त्रको भी 'अर्थ शास्त्र' कहा जा सकता है और स्मार्त-पण्डितोंको भी अर्थवित् पण्डित कहा जा सकता है क्योंकि समाजरक्षा रूप अर्थ ही बनके धर्मका एकमात्र साक्षात् उद्देश्य है। किन्तु पारमार्थिक पण्डित इस अर्थसे साक्षात् रूपसे परमार्थका साधन करते हैं। सारग्राही वैष्णव अर्थशास्त्रका यथोचित आदर करते हुए उसकी सम्यक् आलोचना करनेसे विरत नहीं होते। इन सभी अर्थशास्त्रोंकी चरमगतिरूप परमार्थका अनुसन्धान करते हुए वे

सभी अर्थवित् पण्डितोंमें विशेष रूपसे पूजित होते हैं। परमार्थ निर्णयमें अर्थवित् पण्डित उनकी सहकारितामें परिश्रम करते हैं। युद्ध क्षेत्रमें शान्ति-संस्थापकरूपसे सारग्राही वैष्णव विराजमान हैं। नानाप्रकारके पापियोंसे धृष्टा कर उनका परित्याग नहीं करते। कभी-कभी गोपनीय उपदेश, कभी कभी प्रकाश्यरूपमें उपदेश, कभी बन्धुभावसे, कभी कभी विरोधभावसे, कभी-कभी अपने चरित्रको दिखलाकर और कभी पापका दण्ड देते हुए सारग्राही वैष्णव पापियोंके चित्त शोधनमें विशेष तत्पर रहते हैं।”

—कृ. स. १०। १४

—जगद्गुरु ॐ दिष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ १६)

श्रीकृष्णने गोपोंको जिस लोकका दर्शन कराया था, वह वैकुण्ठ से अभिन्न है। श्रीमद्भागवतके इन श्लोकों में इसका प्रमाण पाया जाता है—

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकाम कर्मभिः ।
उच्चवाचानु-गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥
इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकाहणिको विभुः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥

ते तु ब्रह्महृदं नीतामग्राः कृष्णान् चादृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽप्यगात् पुरा ॥
नन्वादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिवृताः ।
कृष्णञ्च तत्र ह्यन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥

सर्वज्ञ भगवानने गोपगणोंके संकल्पको जानकर चिन्ता की थी कि लोग अविद्या का कर्म कर देव-तिर्यगादि नाना योनियोंके भ्रमण करते हैं। इसलिए वे अपनी गतिको जान नहीं पाते। गोपोंने भी कृष्णमायासे अपने सम्बन्धमें वैसी धारणा की

थी। महाकाव्यिक भगवानने यह चिन्ता कर प्रकृति से अतीत अपने लोकका गोपोंको दर्शन करवाया था। त्रिगुणातीत होने पर मुनि लोग जिसका दर्शन करते हैं, वह सत्य, ज्ञान, अनन्त ज्योतिर्मय ब्रह्म है। गोपोंने उसीका दर्शन किया था।

ऊपर कहे गये श्लोकोंके “स्वां गति”, “गोपानां स्वं लोकं” और “कृष्णञ्च” आदि शब्दोंसे यह जाना जाता है कि इस लोक के साथ गोपोंका सम्बन्ध है, और वहाँ उनके अधिकार का निर्देश हुआ है। कृष्ण शब्दसे इस लोकमें उनकी साक्षात् स्थिति भी निश्चित होती है। अतएव वह नारायणका विहार स्थल वैकुण्ठ नहीं, बल्कि गोलोक है। गोपगण भी वैकुण्ठ में नहीं रहते, उनकी गोलोकमें ही नित्य अवस्थिति है। श्रीमद् भागवतोक्त श्लोकसे यह जाना जाता है कि गोपोंने उस धाममें श्रीकृष्णका दर्शन किया था। इसलिए ब्रजलीलामें और गोलोक-लीलामें श्रीकृष्ण की तरह उनके परिकरों का भी प्रकाश भेद जाना जाता है। श्रीकृष्ण जिस प्रकार एक प्रकाशसे गोलोकमें और दूसरे प्रकाशसे वृन्दावनमें रहते हैं, उनके परिकर गोप-गोपीगण भी उसी प्रकार दोनों स्थानोंमें अवस्थित हैं। जब प्रकाश भेद होता है, तब दोनों धामगत विविध लीलारस पुष्टिके लिए लीलाशक्ति परिकरोंका अभिमान भेद और परस्परके अननुसंधान का प्रायः सम्पादन करती हैं। इसलिए कहा गया है कि वे भ्रमवशतः अपनी गति नहीं जानते।

इस प्रकार प्रकाशान्तर असम्भव नहीं है। श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं और उनके विग्रह, धाम,

परिकर, लीलादि एक ही समयमें एक ही स्थानमें अनन्त प्रकारके वैभव प्रकाश करनेमें समर्थ हैं।

द्वारका और मथुरामें यादव लोग और वृन्दावन में गोपगोपी लोग उनके नित्य परिकर हैं। पद्मपुराणके कार्तिक-माहात्म्यमें श्रीकृष्ण सत्यभामा से कहते हैं—

एते हि यादवाः सर्वे मद्गुणा एवं भामिनी ।
सर्वदा मत्प्रिया देवि मत्तुल्यगुणशालिनः ॥

हे भामिनी ! ये यादवगण मेरे निजजन हैं, मेरे सर्वदा प्रिय हैं और मेरी तरह गुणशाली हैं। इस श्लोकमें ‘एव’ पदके द्वारा केवल यादवगण ही श्रीकृष्णके परिकर हैं, किन्तु देवता नहीं हैं, यह बात निश्चित हुई।

मथुरामें प्रकट लीलाकालमें जो सभी परिकर आविर्भूत होते हैं, उनमेंसे कोई-कोई वहाँ निगूढ़ रूपसे विराजते हैं। यह अप्रकटकालकी बात है। श्रीगोपालतापनी उपनिषद्में कहते हैं—

यत्रासौ संस्थितः कृष्णस्त्रिभिः शक्त्या समाहितः ।
रामानिरुद्धप्रद्युम्नरुक्मिण्या सहितो विभुः ॥

जिस मथुरामें विभु श्रीकृष्ण राम, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और रुक्मिणीके साथ अवस्थित हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि प्रकटाप्रकट सर्वकालमें ही उनकी वहाँ नित्यस्थिति है।

पद्मपुराणके पाताल खण्डमें—

अहो अभाग्यं लोकस्य न पीतं यमुनाजलम् ।
गोवृन्द गोपिका संगे यत्र क्रीडति कंसहा ॥

कंसघाती श्रीकृष्ण गो-गोपिका के साथ जहाँ क्रीड़ा करते हैं, उस वृन्दावनस्थ यमुनाका जल जिन लोगोंने पान नहीं किया, वे अभागे हैं। इस प्रमाण के अनुसार यह जाना जाता है कि वृन्दावनस्थ यमुनाके जलमें श्रीकृष्ण गो-गोपियोंके साथ नित्य विहार करते हैं। स्कन्दपुराणमें भी कहा गया है—

वत्सवंत्सतरीभिश्च सदा क्रीडति माधवः ।
वृन्दावनान्तरगतः सरामो बालकंवृतः ॥

श्री बलरामके साथ श्रीकृष्ण गोपबालकोंसे खरिवृत्त होकर श्रीवृन्दावनमें गौ और बछड़ोंके साथ नित्य विहार करते हैं।

पद्मपुराणमें भगवान कहते हैं—

नित्यं ये मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा ।
यमुनां गोपकन्याश्च तथा गोपालबालकान् ।
यमावतारो नित्योऽयमात्र मा सशयं कृथा ॥

मेरी इस मथुरापूरीको नित्य जानना। वृन्दावन नामक वन, यमुना, गोपकन्या, गोपगणोंको भी नित्य जानना चाहिए। इस मथुरा-वृन्दावनमें मेरा नित्य अवतार है, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है। ऋग्वेदमें कहा गया है—

ता वां वास्तुन्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः ।

अत्राह तदुक्तायस्य वृष्णाः

परमं पदमवभाति भूरीति ॥

हम तुम्हारे (रामकृष्णके) उस वास्तु (लीला स्थान) को पाने की कामना कर रहे हैं। वहाँ भूरिशृङ्ग शुभलक्षणयुक्त सभी गौएँ वास करती हैं। भूरिशृङ्ग का अर्थ है महान् सींगयुक्त। वृष्णा का अर्थ है जिनका श्रीचरणकमल सर्वाभिलाष-पूरण-कारी हैं। उनका परमपद प्रपञ्चातीत धाम बहुत प्रकारसे प्रकाशमान है।

अथर्ववेदोक्त गोपालतापनीमें कहा गया है—

जन्मजराभ्यां भिन्नः स्थाणुरयमच्छेदोऽयं योऽसौ-
सूर्ये तिष्ठति ।

योऽसौ गोषु तिष्ठति योऽसौ गोपान् पालयति
योऽसौ गोपेषु तिष्ठति ॥

अर्थात् जो जन्मजरा रहित हैं, त्रिकालस्थायी हैं, अपक्षय शून्य हैं, सूर्यमण्डलमें अवस्थित हैं, सभी गौश्रोंमें अवस्थित हैं, जो गोपोंका पालन करते हैं, वे गोपों में अवस्थान करते हैं। इत्यादि।

इन सभी दृष्टान्तोंके द्वारा गोपोंके साथ श्रीकृष्ण का नित्यविहार प्रमाणित होता है।

— त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रोती महाराज

सम्राट कुलशेखरकी प्रार्थना

निराश्रित शून्यवादी व्यक्ति कदापि सुखी नहीं हो सकते। इसलिये श्रीनरोत्तम ठाकुर कहते हैं— “आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण।” आत्मा और परमात्मा नित्य सहचर हैं। आत्माके साथ परमात्मा सर्वदा ही रहते हैं। आत्मा परमात्माको भूलकर जब विषय भोग करता है या कर्मफल भोग करता है, तब आत्माको दुःख भोगना पड़ता है। किन्तु जब विषय भोगको छोड़कर आत्मा परमात्माकी सेवा करता है, तब ही उसे स्वाभाविक आनन्द प्राप्त होता है। यही आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध है। आत्मा परमात्माको भूलने पर भी परमात्मा आत्माको भूल नहीं सकते। यही प्राकृतिक नियम है। उसी नियमानुसार परमात्मा भगवान सर्वदा ही आत्माके मंगलकी कामना कर आत्माको अपने साथ सम्बन्ध करानेके लिए कई प्रकारसे चेष्टा करते हैं। क्योंकि परमात्मा यही चाहते हैं कि जीव सर्वदा ही सुखी रहें। ऐसी चेष्टाओं द्वारा वे हमारी सभी चेष्टाओं को अपने साथ युक्त कर कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आदिकी शिक्षा देते हैं। कर्म और ज्ञान दोनों ही जीवात्माके लिए दुःखदायी हैं। भगवान अत्यन्त मूढ़ कर्मज्ञान परायण व्यक्तियोंको सुखी करनेके लिए कर्म और ज्ञानके साथ भक्तिका योग कर मूढ़ व्यक्तियोंको कर्मयोगी या ज्ञानयोगी करनेकी चेष्टा करते हैं। विषयगामी पुत्र या जीवात्माको सर्वदा ही सुखी करनेके लिए भगवान जो

चेष्टा करते हैं, वही उनकी दयाका परिचय है। दयापरवश होकर वे केवल अपने अनुगत भृत्योंको बद्धजीवोंके निकट प्रेरण करते हैं, ऐसी बात नहीं है। बल्कि समय-समय पर वे स्वयं आते हैं और महावदान्य अवताररूपसे भगवत्प्रेम सभी जीवोंको ही प्रदान करते हैं। इन सभी लीलाओं द्वारा वे बद्धजीवोंको सनातन आनन्दका आस्वादन कराते हैं और उस सनातन आनन्दके बहुतसे स्तरके आनन्द चिन्मयरस (दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुरादि रस) में उन्हें नियुक्त करते हैं। इन आनन्द चिन्मय रसों के छायारूप जड़ीय रस जो भी इस जगतमें वर्तमान हैं, वे सभी हेय और तुच्छ हैं। इसलिए उनमें निरवच्छिन्न शुद्ध आनन्द नहीं है। योगी लोग उन सभी भौतिक रसोंके प्रति आकृष्ट नहीं होते। वे सत्यानन्द आत्मजगतके आनन्दको प्राप्त करनेके लिए महावदान्य अवतारके नित्य प्रकाश स्वरूप श्रीश्रीनित्यानन्दजीके कोटिचन्द्र सुशोतल पदकमल का आश्रय ग्रहण करते हैं। वञ्चित मूढ़ व्यक्ति जड़ अहङ्कारमें मत्त होकर नित्यानन्दका सम्बन्ध त्याग कर देते हैं।

भगवान यदि दयालु नहीं होते, तो हमारी इस कृष्ण विमुख अवस्थामें भी हमें इतना द्रव्य नहीं प्रदान करते। उनकी दयासे हम इस बद्ध अवस्थामें भी जीवनधारण करनेके उपयुक्त जल-वायु, खाद्य द्रव्य, ठण्ड-गर्मी, वर्षा आदि प्राप्त किये हैं। भगवान ने हमारी सुख-सुविधाके लिए जो सभी वस्तुएँ

प्रदान की हैं, वे भगवानकी प्रदत्त वस्तु हैं—ऐसा हम समझ नहीं पाते। इसीलिए हम उन वस्तुओंको समान भावसे वितरण न कर अपनी सम्पत्ति सम्भरकर उनका अवैध रूपसे भोग करनेकी चेष्टा करते हैं। यही चेष्टा जगतमें बहुत प्रकारके अनर्थोंकी सृष्टि करती है। साम्यवादी जिस प्रकार समताका वितरण (Equal distribution of wealth) करनेकी चेष्टा कर रहे हैं, वह समयोपयोगी प्रकृति का संतुलन होने पर भी जब तक साम्यवादमें भगवत्-सम्बन्धका उदय न होगा, तब तक उस साम्यवाद या (Communism) की सफलता वरुण दूर ही है। ऐसे साम्यवाद और पूंजीवाद (Capitalism) कदापि जगतका उपकार नहीं कर सकते। सामायिक आकर्षण रहनेके कारण वे तात्कालिक उपयोगी हो सकते हैं, सर्व कालिक सुख के लिए नहीं। ईशोपनिषद्के वचनानुसार यदि हम सभी द्रव्योंको भगवानका जाने और "तेन त्दक्तेः" प्रसाद बुद्धिसे जगतके सभी वस्तुओंको ग्रहण करें, जो हमारे कर्मोंका बुरा फल हमें भोगना न पड़ेगा। यदि हम इस प्रकार शत-सहस्र वर्ष भी जीवित रहें, तो हमें और कर्मबन्धनका भय न रहेगा। किन्तु यदि भगवानको भूलकर एक मुहूर्तके लिये भी भोगपिपासा हो, तो उससे यथेष्ट कर्मबन्धन होता है। भगवत् विद्वेषी दुरात्मा व्यक्ति सर्वदा ही भोग की चेष्टा करते हैं, किन्तु दयालु भगवान उनकी सर्वदा ही रक्षा करनेका प्रयास करते हैं। भगवत् भक्त भी भगवानका आदर्श ग्रहण कर वैसी ही चेष्टा करते हैं। इसीलिए ऐसे भगवत् भक्त भगवानके अत्यन्त प्रिय हैं। जो व्यक्ति अपनी उन्नतिकी इच्छा

से भगवत् भक्तिका साधन करते हैं, उनकी अपेक्षा हरिदास ठाकुर, वासुदेव विप्र आदि भक्त अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। क्योंकि श्री नित्यानन्दानुगत भक्तोंने अपने चिद्रक्तका विसर्जन करके भी दूसरों की भगवत् विमुखतासे उद्धार की है। भगवानकी दयापरतासे भगवत्भक्तोंकी दयापरता और भी अधिक है।

भगवानके भक्त भगवानके प्रेममें अत्यन्त अधीर होकर भगवत्सेवाके लिए बद्धजीवोंके निकट अधिक दयाका प्रकाश करते हैं। इसलिए भगवान् स्वभावतः ही उन सभी भक्तोंकी सेवासे प्रसन्न होकर 'भक्तप्रिय' या 'भक्तवत्सल' नाम धारण करते हैं। इससे भगवानमें पक्षपातित्वका दोष नहीं आता। भगवान भगवद् विद्वेषियोंका विनाश करते हैं और भगवद् भक्तोंकी रक्षा करते हैं। विरुद्ध धर्मोंका सामंजस्य करनेमें समर्थ होनेके कारण भगवानकी ऐसे विरुद्ध कार्य द्वारा भी उनकी दयाका ही प्रकाश होता है। भगवानका बाहरी पक्षपातित्व माता-पिताके पक्षपातित्वके समान है। भगवद्गीता में भगवानने स्वयं अपने पक्षपातित्वको स्वीकार किया है। यद्यपि भगवान् सभी जीवोंको समानरूप से ही देखते हैं, उनका शत्रु भी कोई नहीं है और मित्र भी कोई नहीं है, तथापि भगवान भक्तके हृदय हैं और भक्त भगवानके हृदय हैं। क्योंकि जीवन विपन्न होने पर भी श्रीहरिदास ठाकुर आदि भक्त भगवानका पक्षपातित्व त्याग नहीं कर सके। इसीलिए भगवान् भी अपनेसे प्रगाढ़ स्नेह करनेवाले भक्तोंका पक्षपातित्व त्याग नहीं कर सकते। प्रह्लाद महाराजने भगवानका पक्षपातित्व त्याग कर अपने

पितासे भी मतैक्य करना स्वीकार नहीं किया। अतएव भगवान् 'भक्तप्रिय' हुए बिना रह नहीं सकते। भगवान् अपनी भक्तप्रियताके प्रमाणमें सर्वदा ही कहते हैं—“मेरा भक्तोंका कदापि विनाश नहीं होता”, “मैं भक्तोंका योग-क्षेम स्वयं वहन करता हूँ” आदि आदि। भक्त लोग भगवानकी सेवाके लिए पुत्र, स्त्री, गृह और गृहके सभी सुखोंका परित्याग कर पागलोंकी भाँति घूमते-फिरते हैं। भगवान भी भक्तोंकी “आत्मेन्द्रिय-तृप्ति वाञ्छाका परित्याग” और “भगवत्-सेवा” की बात कदापि भूल सकते हैं? यह बात असम्भव है। शास्त्रों इस बातके प्रचुर प्रमाण हैं कि भगवान अपने एकान्तिक भक्तोंकी सर्वदा ही रक्षा करते हैं। भगवद्भक्त अम्बरीष जब दुर्वासाजीके क्रोधके शिकार हुए थे, उस समय भगवानने उनकी रक्षाके लिए सुदर्शन चक्र भेजा था। भक्त निरीह और शान्त होते हैं। योगी योगबलसे ब्रह्माण्ड भेद कर साक्षात् भगवानके धाममें तुरन्त प्रवेश करनेकी योग्यता रखते हैं। भगवान अपने स्वधर्मनिष्ठ निरोह आडम्बरशून्य भक्तोंकी सब प्रकारसे रक्षा करते हैं।

शुद्ध निरीह भक्त धृष्ट्या द्वारा जब तब भगवान का दर्शन करनेकी इच्छा नहीं करते। वे मेषा-सुख में ही निमग्न रहते हैं। भगवानको सेवा और भगवान एक ही वस्तु हैं, यह बात भुक्ति मुक्ति सिद्धिकामी सम्भ्र नहीं सकते। जो व्यक्ति भगवान् की सेवाको छोड़कर भगवानको दर्शन करनेकी अभिलाषा रखते हैं, वे सकाम भक्त हैं। भगवत्-सेवा परायण भक्तोंको देखनेके लिये भगवान ही व्यस्त हो पड़ते हैं। श्री हरिदास ठाकुर दैन्यके कारण

जगन्नाथ मन्दिरमें प्रवेश नहीं करते थे। किन्तु भक्त-प्रिय जगन्नाथ प्रतिदिन उनका दर्शन कर जाया करते थे। ऐसी 'भक्तप्रियता' भगवान की स्वभाविक वृत्ति है। इसमें पक्षपातित्वका दोष बिलकुल नहीं है। भक्त और भगवानके बीचमें इस प्रकारके अप्राकृत स्नेहका आदान-प्रदान है। चिद्जगतके विकृत प्रतिफलरूप इस भौतिक जगतमें उस अप्राकृत रसका कुछ आभास है। यह स्नेहाभास केवल मनुष्य समाजमें ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, आदि मनुष्येतर प्राणियोंमें भी देखा जाता है। जो वस्तु भगवानमें नहीं है, वह जीवोंमें आ नहीं सकता। जीव विभुचैतन्यरूप भगवानका अंश है। इसलिये विभुचैतन्य भगवानका अंश जीव में भी वह स्नेह रहना स्वाभाविक है। मायिक जगतमें जब अप्राकृत गुणोंका विकृत प्रतिफल होता है, तब उस प्रतिफलित स्नेह या अन्यान्य गुणोंकी हेयता और अवरता देखी जाती है। जब वे प्राकृत गुण या प्राकृत स्नेह भगवत् सम्बन्ध द्वारा निर्मल हो जाते हैं, तब भक्त और भगवानके बीच नित्य वर्तमान अप्राकृत स्नेह बन्धनका प्रकाश होता है। दोनों प्रकारके स्नेहमें सादृश्य रहने पर भी दोनों एक नहीं हैं। यही अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्वका रहस्य है।

भगवानकी दयालुताको मायामुग्ध जीव भूल सकते हैं, किन्तु सर्वज्ञ भगवान कैसे भूल सकते हैं? इसलिये जब मूर्ख मनुष्य दूसरे जीवोंकी हत्या कर अपना उदर-पूर्ति करते हैं, तब दयालु भगवान ऐसे मनुष्योंको उचित दण्ड देते हैं। मनुष्योंके राज्यमें जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको मारता है, तब उसे

दण्ड सिलता है। किन्तु भगवानके राज्यमें यदि मनुष्य कीट-पतङ्गकी भी हत्या करता है, तब उसे उसका दण्ड मिलता है। किन्तु जब वह मनुष्य भगवानका प्रिय बन जाता है, तब उसके स्वाभाविक सदगुण अपने आप प्रकाशित होते हैं। अतएव यदि किसी मनुष्यको सदगुणसम्पन्न बनाना हो, तो उसे भगवत्प्रिय भगवद्भक्त बनानेकी ही आवश्यकता है। कानून बनाकर रिश्वत लेकर असत्को सत् बनाया नहीं जा सकता। भगवत् प्रेम ही समस्त सदगुणोंका एकमात्र आधार है। भक्तप्रिय भगवान सभी मनुष्योंके हृदयमें अवस्थान कर जीवों को शिक्षा देते हैं—यदि जीव भगवद् उन्मुख होकर

उन सब शिक्षाओंको ग्रहण करनेका आग्रह प्रकाश करें। जीवके साधारण आग्रहको देखकर भगवान् उससे अधिक आग्रह प्रकाश करते हैं। इसलिये निष्कपट शुद्धभक्त अज्ञानी नहीं हैं। इसके शास्त्रोंमें कई प्रमाण मिलते हैं। लिखे पड़े भक्त ही ज्ञानी-भक्त हैं, ऐसी बात नहीं है। जो निष्कपट भगवद्भक्त हैं, वे ही ज्ञानीभक्त हैं अर्थात् भगवानके सम्बन्ध ज्ञानके परिपूर्ण ज्ञाता हैं। सिद्धान्तवित् ज्ञानीभक्त ही भगवानकी भक्तप्रियताको जाननेमें समर्थ होते हैं।

(क्रमशः)

—त्रिविण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज।

श्रीकृष्णाविर्भाव

(गताङ्क से आगे)

जिनके घामस्थ समस्त भूमि और गृहसमूह चिन्तामणिमय हैं, जहाँ की वृक्षलताएँ कल्पतरु हैं, जहाँ कामधेनुओं का पालन होता है, असंख्य लक्ष्मियाँ (गोपियाँ) बड़े आदरके साथ जिनकी निरन्तर सेवा कर रही हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ। श्रीयशोदाजी नियमितरूपसे लक्ष्मीनारायणकी सेवा, पतिसेवा, सास ससुर की सेवा और ब्राह्मण-अतिथियोंकी सेवा करती थीं। उनके उदरमें स्वयं भगवान का प्रवेश होनेसे वे विश्ववन्दित थीं। उनकी कान्तिसे व्रजभूमि उज्ज्वल हो गई।

माघमास की प्रतिपदा को भगवान ने योगमाया

के साथ श्रीनन्द महाराजसे श्रीयशोदाजी के गर्भमें प्रवेश किया। उसी दिन रात्रिमें एक ही समय मथुरा में श्रीवसुदेवसे श्रीकृष्णके वैभव प्रकाश वासुदेवने देवकीजी के गर्भ में प्रवेश किया। जैसे शुक्ल प्रतिपदाका चन्द्र दिन प्रति दिन बढ़ता है, वैसे ही श्रीयशोदा और देवकीके गर्भ एक साथ बढ़ने लगे। पश्चात् भाद्र कृष्णाष्टमीको दोनों का प्रसवकाल हुआ।

गर्भकाले त्वसम्पूर्णं अष्टमे मासि ते स्त्रियो ।

देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा ॥

(हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व ४ थं अ०)

साधारण गर्भका प्रसव समय दसवें माह में होता है, परन्तु श्रीयशोदा और देवकी ने अपने-अपने गर्भ को ८ वें महिने में ही प्रसव किए। श्रीमद्भागवत में शुकदेवजीने उल्लेख किया है--“अद्रश्यतानुजा त्रिषणोः”। स्वयंरूप श्रीकृष्ण श्रीयशोदाजी के गर्भ से उत्पन्न हुए और वासुदेव गर्भसे नहीं, बल्कि प्रकटित हुए। “विष्णु अनुजा अद्रश्य” इस वाक्यसे श्रीयशोदाजीके गर्भ में पहले स्वयं श्रीकृष्णने प्रवेश किया और पश्चात् योगमाया प्रविष्ट हुई, यह स्पष्ट जाना जाता है।

श्रीकृष्ण की जन्मलीला गोकुलमें ही सम्पन्न हुई, मथुरा में नहीं। मथुरा में वे केवल आविर्भूत मात्र हुए। गोकुलमें ही नरवत् लीला हुई। गोकुल में श्रीकृष्ण नन्द महाराजके नित्य पुत्र हैं। इसलिए शास्त्रों में श्रीकृष्णके लिए “वल्लभीनन्दनं वन्दे”, “यशोदागर्भ संभव” “नन्दगोपकुमाराय” आदि शब्दोक्तियाँ हैं।

कंस के कारागारमें जब वासुदेव प्रकट हुए, उसी समय श्रीयशोदा ने स्वयंरूप श्रीकृष्णको प्रसव किया। कुछ देर पश्चात् ही योगमायाको प्रसव किया। जब श्रीवसुदेवजी चतुर्भुजधारी वासुदेव को नन्द महाराजके घर लाए, उस समय स्वयंरूप श्रीकृष्णने आकर चतुर्भुजधारी वासुदेव को अपने साथ मिला लिया। इसलिए स्वयंरूप कृष्ण ही रह गए। वसुदेवजी उन कृष्णको रखकर योगमाया को ले आये। श्रीरूपगोस्वामीजीने अपने श्रीलघु भागवतामृतमें कहा है—

“गोष्ठे तु मायया सार्द्धं श्रीलीलापुरुषोत्तमः ।
गत्वा यदुवरो गोष्ठं तत्र सूतीगृहं विशन् ॥

कन्यामेव परं वीक्ष्यतामादायात्रजत् पुरम् ।
प्राविशद् वासुदेवस्तु श्रीलीलापुरुषोत्तमे ॥
एतच्चातिरहस्यत्वाद् नोक्तं तत्र कथाक्रमे ।
किन्तु क्वचित् प्रसंगेन सूच्यते श्रीशुकादिभिः ॥

गोकुलमें योगमायाके साथ श्रीलीलापुरुषोत्तम कृष्णने जन्म ग्रहण किया। श्रीवसुदेवजी अपने पुत्र को गोकुलमें श्रीयशोदाजी के सूतिकागृहमें लाये। वहाँ जाकर उन्होंने श्री यशोदाके कन्याका दर्शन किया। उन्होंने पुत्रको वहाँ रखकर कन्याको लेकर लौटे। जब वसुदेव अपने पुत्र वासुदेवको गोकुलमें ला रहे थे, उसी समय श्रीवासुदेव लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णमें मिलकर एक हो गये। यह बात बड़ी रहस्यमयी होनेके कारण श्रीशुकादि महाजनोंने इसे गुप्त रूपसे ही सूचित किया है।

जब यशोदाके गर्भ से श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए, तब श्रीयशोदाको मालूम हुआ कि उन्हें एक पुत्र हुआ है। परन्तु वे योगमायाके प्रभावसे मुग्ध होकर निद्राभिभूत हो गईं।

विश्वेश्वर श्रीहरिका आविर्भाव होनेसे सब प्रकारके मंगलका उदय हो गया। प्रकृति सुन्दरी सज्जित हो गई, गिरि कन्दराओंमें नाना प्रकारके भरण और रत्न प्रकाश पाने लगे, नदियों ने मुनियों जैसे प्रशान्तभाव धारण कर लिया, कमल, उत्पल कलहारादि पुष्प प्रस्फुटित होने लगे, पक्षियाँ वृक्षों पर कुंजन करने लगीं। फूलोंके वृक्षोंने जंगल की शोभा बहुत बढ़ा दी। मंद-मंद पवनके बहने से केतकी, चंपकादि फूलोंका सुगन्ध चारों ओर फैल

गया। प्रस्फुटित फूलों पर भ्रमर गुन-गुन करते हुए ऐसे लग रहे थे मानो वे श्रीहरिका गुणगान कर रहे हैं। भाद्र महिने की शुक्लाष्टमी तिथिमें मध्यरात्रिमें रोहिणी नक्षत्रके शुभलग्नमें श्रीनन्द महाराजके भवनके श्रीहरि प्रकट हुए थे। उस समय कमल और कुमुद एक ही साथ प्रस्फुटित हुए, मध्यरात्रिमें ही पक्षियाँ कलरव करने लगीं।

भगवान् किलकारियाँ भरकर हँसने लगे। आनन्द स्वरूप श्रीहरिके प्राकट्यसे सभी आनन्द समुद्रमें डूब गए और जड़वत् होने लगे। श्रीहरिने मन ही मन सोचा, “मुझे प्राप्त करनेके लिए इन ब्रजवासियोंने कितनी तपस्या की है? इन ब्रजवासियोंकी ऋणसे मैं उच्छ्रान नहीं हो सकता। ‘अजित’ नामसे विख्यात मुझे इन एकान्तिक भक्तोंने जीत लिया है। ये सभी भक्त मेरी सेवाको छोड़कर कुछ भी नहीं चाहते। इसलिए मैंने अपने आपको इनके हाथोंमें समर्पण कर दिया है।” ऐसी चिन्ता करते-करते वे श्रीयशोदा माताके गोदमें क्रन्दन करने लगे। क्रन्दन की ध्वनिसे यशोदाजी और सब गोपियाँ जग गईं। पुत्रको देखकर यशोदाजी के नयनोंसे अश्रुधारा बहने लगी, और स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगी। शिशु का क्रन्दन सुनकर और सब गोपियोंने सोचा—यह मधुर क्रन्दन ध्वनि कहाँ से आ रही है? ऐसी मधुर ध्वनि हमने कभी नहीं सुनी। यह ध्वनि किसी प्राकृत शिशु की नहीं है। मालूम होता है कि यह ध्वनि श्रीयशोदा के नवजात शिशुकी है। सभी आनन्दसे जड़वत् हो गईं। सभी स्खलित पदसे गिरते उठते यशोदा भवनमें जाने लगीं। वहाँ जाकर उन्होंने नन्दरानीकी गोदमें एक

अभूतपूर्व शिशुका दर्शन किया। उसे देखकर सभी को सन्देह हुआ कि यह नीलमणि का टुकड़ा है या नीलमेघ है? वे यशोदासे कहने लगीं—“हे यशोदे! तूने कैसे सुन्दर लालको प्रसव किया है! यह तो सूर्तिमान आनन्द है। ऐसा अपूर्व लावण्यमय शिशु हमने कभी नहीं देखा। तेरे भाग्यको क्या कहना है! तुम्हारे शिशुको देखकर हमारे स्तनोंसे दूधकी धारा बह रही है और नयन अश्रुधारा बहा रही हैं। तेरा पुत्र साधारण बालक नहीं है। यह साक्षात् हरि हैं। तुम इसे लाड़-प्यारसे पालन करना” उन गोपियोंके ये वचन सुनकर श्रीयशोदाजी प्रेमाश्रु बहाते-बहाते उनकी वन्दना करते हुए पुत्रकी शुभकामना से उनसे आशीर्वाद माँगने लगीं।

जिस प्रकार पुष्पोंकी सुगन्धको पवन क्षणभरमें चारों दिशाओंमें फैला देता है, वैसे ही यह शुभ संवाद चारों ओर फैल गया। पूर्वकालमें जिन्होंने पुत्र प्राप्तिके लिए तपस्या की थी और नन्द नामक अपने पुत्रके भावी लालको देखनेके लिए लालायित थीं, ब्रजरानी नामसे प्रसिद्ध नन्द महाराजकी वृद्धा जननी वरीयसी गोपी और ब्रजधामकी कल्याणकारिणी श्री पौर्णमासी देवी नवजात शिशुका दर्शन करने आईं। दोनोंकी वृद्धावस्था थी, बाल पक गए थे और स्थूल शरीर था। पौर्णमासीजी गेरुए रंग की साड़ी पहिने हुए थीं। वे आनन्दके समुद्रमें लहराते हुए जब यशोदाके सूतिका गृहमें पहुँची, सभी लोगोंने उन दोनोंकी चरणोंकी धूलि ली और बैठनेको आमन दिए। यशोदा पीतवस्त्र धारण किए थीं और हरिद्रासे रंगे वस्त्र द्वारा आवृत शिशु उनके गोदमें था। यशोदाजी रक्षणा-

लंकारसे भूषिता थीं और ललाटमें सिन्दूर धारण किए थीं। यशोदाजीने दोनोंको सिर भुकाकर प्रणाम किया। श्रीपौर्णमासी देवी और वरीयसी गोपीने उनका सिर स्पर्श कर आशीर्वाद दिया। श्री यशोदाजीने वस्त्र हटाकर शिशुका दर्शन करवाया। शिशुका रूप बड़ा ही अलौकिक था। उसका वर्ण इन्द्रनीलमणि सदृश था, नाक तोतेकी चोंच जैसे थी, नेत्रयुगल और वक्षस्थल विशाल थे, उर प्रदेश और कटिदेश बड़े ही मनोहर थे, भुजयुगल आजानुलम्बित थे, नेत्र की भँवर इन्द्र धनुष के समान थे, करतल, पदतल और अंगुल लाल कमल जैसे लाल थे। सिरमें छोटे-छोटे घुंघराले बाल थे। उसका अङ्ग सौन्दर्य का धाम था। जिस अंग पर दृष्टि जाती थी, वह वहाँ पर डूब जाती थी। इसलिए शुकदेव जी कहते हैं—'भूषणं भूषणंगं'। अर्थात् अंग-प्रत्यंग इतने सुन्दर थे कि वे भूषणोंको भी भूषित करते थे। उस शिशुके करतल में गदा, शंख, चक्र, जब, छत्र, अर्धचन्द्र, अंकुश, ध्वजा, पद्म, पुष्प, हल, मणि आदि चिह्न थे। पदतलमें चक्र, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, जब, अम्बर, छत्र, कलस, शंख, गोस्पद, स्वस्तिक, अंकुश, कमल, धनुष, ध्वजा, वज्र, पताका, उर्ध्वरेखा आदि चिह्न थे। यह देखकर योगमाया रूपिणी श्री पौर्णमासीजी परम आनन्दित होकर बारम्बार यशोदाजी के भाग्यकी सराहना करने लगीं। इसी तरह सभी गोपियोंने परमानन्द प्राप्त किया।

यशोदाकी आज्ञासे एक गोपीने जाकर यह शुभ सम्वाद श्री नन्द महाराजको सुनाया। जब श्री नन्द

महाराजने यह सुना कि उन्हें एक अपूर्व लावण्यमय पुत्र हुआ है, वे परमानन्दित हुए और उन्होंने अपने बन्धु बान्धवों से यह बात कही। उन्होंने सन्देश लानेवाली गोपीको बहुमूल्य उपकार दिए। सभी लोग अपने-अपने भवनको सजाने लगे। श्रीनन्द महाराजने वैदिक विधानुसार स्नान किया और पुत्रके जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किए। उन्होंने पहले नान्दिमुख किया। पश्चात् अन्तःपुर में प्रवेश कर मंगल घटादि स्थापन किया। यह सब मंगल कार्य करनेके पश्चात् उन्होंने अपने नीलकमल जैसे सुन्दर शिशुका दर्शन किया। शिशुका दर्शन कर उनका शरीर आनन्दसे जड़वत् हो गया। आँखोंसे आंसू बहने लगी, कंठ गद्गद् हो गया, सभी अष्ट सात्त्विक विकार प्रकट होने लगे। उपनन्दकी पत्नी तुंगी नामकी गोपीने शिशुको नन्द महाराजजीके गोद में रख दिया। वे आँखोंसे शिशुका रूप दर्शन कर, नासिका से अङ्गका घ्राण लेकर, कर्णसे सुमधुर क्रन्दन सुनकर आनन्द समुद्रमें डूब गए।

इधर समस्त गोपीने आनन्दसे श्रीनन्दपुरीको सजाया। समग्र पुरीको चन्दन जलसे धोकर रंग-विरंगे ध्वजाएँ और पताकाएँ लगाकर पुरीको इस प्रकार सजा दिया मानों उसमेंसे सूर्यके किरण प्रवेश कर नहीं पायेंगे। गृहोंके द्वार पर स्वर्णकुम्भ और तोरणावलियाँ शौभायमान हो रहीं थीं। राजद्वार पर द्वारपाल खड़े थे जो बड़े ही वीर थे, नाना प्रकारके वस्त्र पहिने थे, और हाथोंमें दण्ड धारण किए थे। उनके कानोंमें कुण्डल थे, हाथोंमें सोनेके कड़े थे, और सिर पर पगड़ी थी। सभी गृह द्वारों

पर कदली-वृक्ष, सुपारी वृक्ष आदि शोभायमान थे। सुगंधित धूपसे सारी पुरी सुगंधित हो गई थी। पुरीके नरनारी नाना प्रकारके वस्त्रालंकारसे सुशोभित होकर आनन्दसे भ्रमण कर रहे थे। सुवर्णहार पहिने दासियाँ विविध कार्योंमें व्यस्त थीं। इस प्रकार नन्दपुरी आनन्दमय हो गई।

उस समय वह तरह-तरहके वाद्य बजानेवाले आये और बड़े ही मधुर स्वरसे अपने-अपने वाद्य बजाने लगे। नर्तक और नर्तकियाँ नृत्य करने लगे। नन्द महाराजके अभूतपूर्व बालकको दर्शन करने आश पासके ग्रामोंसे अनेक नरनारी आने लगे। जो भी जाता था, उसीका मन उस शिशुके रूपमें ही डूब जाता था। उस शिशुका दर्शन कर सभी अपनी सुध बुध खो बैठते थे। वे विधाता की निन्दा करने लगे कि उन्होंने केवल दो ही आँखें दी हैं, उनपर भी पलक दे दिए। ऐसी अवस्थामें कृष्णके रूपका कैसे पान किया जा सकता है? जिस भगवानका दर्शन करने के लिए योगी लोग हजारों जन्मों तक तपस्या करते हैं, उन अजित भगवानका दर्शन गोप-गोपियोंने अनायास ही कर लिए।

गोपियोंके सिरमें गूँथे हुए फूलों के नीचे गिरने से समस्त मार्ग फूलमय हो गए थे। वे सभी अपने शरीर की सुध-बुध खोए हुए थीं। उनको अपने वस्त्रों का तथा वेणीकी बिलकुल सुध बुध नहीं थी। गोप लोग विचित्र वस्त्राभूषण पहिने हुए जा रहे थे। वे अपने कन्धों पर दूध दही का भार लेकर नाना प्रकार की बातें करते हुए जा रहे थे।

व्रजभूमि आनन्द रसका सरोवर है। गोकुल

उसमें प्रस्फुटित कमल है। गोप-गोपियाँ उस कमल की पंखुड़ियाँ हैं। श्रीकृष्ण कमल के कर्णिका हैं। श्रीराधाजी उसकी सुगन्ध हैं। श्रीकृष्णमें तन्मय होनेके कारण व्रजवासियोंको कालका भी ध्यान नहीं रहता। उनका एक निमेष काल भी श्रीकृष्ण सेवा बिना व्यर्थ नहीं जाता। वहाँ का वात्सलाप ही गान है, गमन ही नृत्य है, वंशो प्रिय सखी हैं, परम पुरुष कृष्ण ही एकमात्र कान्त हैं, गोपियाँ कान्ताएँ हैं, वृक्ष सभी कल्पतरू हैं, जल ही अमृत है, भूमि चिन्तामणिमय है, ज्योति विदानन्दमय है और परम चित्पदार्थ ही आस्वाद्य है। उस आनन्दमय अप्राकृत धाममें नित्य ही श्रीकृष्णका जन्मोत्सव, बाल-लीला, पाँगंड तथा केशोर लीलाएँ चल रही हैं।

नन्द महाराजके नवजात बालकका दर्शन कर सभी गोप-गोपियोंने नाना प्रकार की वस्तुएँ दान कीं। किसी ने रत्न-हार, किसीने कृण्डल, किसीने कंगन, किसीने स्वर्ण-किकिणी, किसीने स्वर्ण-वाजूबन्द तथा और किसीने बहुमूल्य वस्त्र दिए।

श्रीनन्द महाराजके आंगनमें गोप लोगोंने आनन्दके मारे विभोर होकर दूध, दही, हरिद्रा और जल डालकर कीचड़ बना दिया। उसमें महाबलिष्ठ गोप लोग मिलकर आनन्दसे नाच गान करने लगे। भोतरी आंगनमें समस्त गोपियाँ भी इसी तरह आनन्द मना रहीं थीं। मानसरोवर स्थित राजहंसिनियोंकी तरह वे शोभा पा रहीं थीं। उनके हेम कान्तियुक्त शरीर और कमलतुल्य मुखमण्डल बड़े ही शोभायमान हो रहे थे। जिस प्रकार वर्षा-

कालमें आकाश रंग-बिरंगे मेघों से सुशोभित होता है, वैसे ही नन्द भवन विचित्र वेपधारी गोप-गोपियों से सुशोभित हो रहा था। देवताओं की मनोकामना पूर्ण हुई, भक्तजनोंके संकट दूर हो गए, यज्ञ की अग्नियाँ पुनः प्रज्वलित हो उठीं और सर्वत्र आनन्द छा गया।

इसके पश्चात् श्रीनन्द महाराजने बड़े आनन्दसे नट, भाट, सुत, मागध, बन्दीजन आदियों को धन, रत्न, वस्त्रादि भेंट किए। दीन दुःखियों को वस्त्र, भोज्य-द्रव्यादि दिए। ब्राह्मणोंको भी नाना द्रव्य दान किए। अपने बन्धु-बान्धव तथा मित्रोंको भोजन-पान-उपहारादि देकर उन्हें प्रसन्न किया। सब लोगोंसे उन्होंने नवजातशिशुके लिए आशीर्वाद माँगा। सभी उनके दानसे तृप्त हो गये। जिन नन्द महाराजके यहां स्वयं पूर्णानन्द स्वरूप श्रीहरि

प्रकट हुए हैं, उनको सौभाग्य की वर्णना कौन कर सकता है? श्रुति जिनका अनुसंधान कर रही है, योगी जिनका निरन्तर ध्यान कर रहे हैं, ब्रह्मा, शिवादि देवता जिन्हें नित्य प्रणाम करते हैं, वे ही सर्वेश्वर हरि श्रीयशोदाजी के स्तनोंका पान करते हुए नन्दके आँगनमें लोट रहे हैं। इसलिए श्रीरघु-पति उपाध्यायजी कहते हैं—

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये भज तु भवभीता ।
अहमिह न दं व दे यस्यालि दे परं ब्रह्म ॥

अर्थात् कोई श्रुति की शरण लें या स्मृति की शरण लें, भवभीत व्यक्ति महाभारतको भले ही मानें, किन्तु मैं तो उन श्रीनन्द महाराज की बन्दना करता हूँ जिनके आँगनमें परब्रह्म श्रीकृष्ण खेल रहे हैं।

—श्रीहरिकृपादास ब्रह्मचारी

श्री नन्दनन्दन की शोभा

करि मन, नन्द नन्दन ध्यान ।

सेव चरन्-सरोज सीतल, तजि विषय-रस-पान ॥

जानु-जंघ त्रिमंग-सुन्दर, कलित कंचन-दण्ड ॥

काछनी कटि पीतपट दुत्ति, कमल-केसर खण्ड ॥

मनौ मधुर मराल-छौना, किकिनी कल राव ।

नाभि हृद रोमावली-अलि चले सहज सुभाव ॥

कंठ मुक्तामाल, मलयज, उर बनो वनमाल ।

सुरसरी कैं तीर मानौ लता स्याम तमाल ॥

बाहु पानि सरोज पल्लव, धरे मृदु मुख बेनु ।

अति विराजत बदन-विधु पर सुरभि रंजित रेनु ॥

अधर, दसन, कपोल, नासा परम सुन्दर नैन ।

चलित कुण्डल गंड-मण्डल मनहुँ नितंत मैन ॥

कुटिल भ्रू पर तिलक रेखा, सीस सिखिनी सिखंड ।

मनु मदन धनु-सर संधाने देखि घन-कोदण्ड ॥

सूर श्री गोपालकी छवि, दृष्टि भरि-भरि लेहु ।

प्राणपति की निरखि सोभा, पलक परन न देहु ॥

श्रीचैतन्य शिक्षामृत

पंचमवृष्टि-तृतीय धारा (ज्ञान-विचार)

(पूर्व प्रकाशित वर्ष १३, संख्या २, पृष्ठ ४६ से आगे)

दो प्रकार की वस्तुएँ

वस्तु दो प्रकारकी है-चिद्वस्तु और जड़ वस्तु । जड़ वस्तुएँ सर्वत्र ही देखी जाती हैं । इस जड़जगत में जीवके अतिरिक्त और कोई चिद्वस्तु नहीं है । चिदजगतमें भगवान, जीव, और पीठ (धाम) आदि सभी उपकरण ही चिन्मय हैं । इस जगत्में जीव और जड़ भिन्न-भिन्न श्रेणीकी वस्तुएँ हैं । जड़ बद्ध होनेसे जीवकी एक प्रकारसे नयो दशा हो गयी है ।

जीवका धर्म

जीवरूप वस्तुका धर्म क्या है ? ❀ सम्पूर्ण जड़-जगत अन्वेषण करने पर भी जो और कहीं देखा नहीं जाता, किन्तु केवल जीवमें ही लक्षित होता है, वही जीवका धर्म है । सूक्ष्म रूपसे विवेचना करने पर यह स्पष्ट ही स्वीकार करना होगा कि आनन्द ही जीवका धर्म है । + यदि सारे जीव जड़-जगतको छोड़कर अन्यत्र चले जाय, तो यह जगत निरानन्दमय हो पड़ेगा । जल, अग्नि, वायु, आकाश और पृथ्वी—

इनमें कहीं भी आनन्द नहीं रहेगा । जीव ही जगत में आनन्दके धाम हैं । यह पहले ही निश्चित हो चुका है कि जीव चिद्वस्तु है । अभी यह भी जाना गया कि जीव आनन्द धर्मविशिष्ट है । जीवका चिददेह जिस प्रकार जड़सङ्गसे लिङ्ग और स्थूल देहसे आच्छादित हो गया है, उसी प्रकार उसका आनन्दरूप धर्म भी लिङ्ग और स्थूलगत होकर दुःखके रूपमें परिणत हुआ है । जहाँ उस दुःखकी निवृत्ति कुछ परिणाममें देखा जाता है, वहाँ एक क्षणिकत्वरूप सुखका अनुभव होता है । वस्तुतः सुख और दुःख दोनों ही आनन्दके विकार विशेष हैं ।

जीव चिदानन्द है

जीव चिदानन्द है । शुद्धधाममें वह स्वरूप और वह धर्म नित्य विशुद्ध रूपमें प्रकाशित हैं । जड़ जगतमें वह स्वरूप और वह धर्म विकृतरूपमें स्थित हैं । चिद् क्या वस्तु है—यह युक्ति द्वारा या इन्द्रिय द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता । चिद् ही चिद् को जाननेमें समर्थ हैं । चिद् जितिलक्षण सामग्री

❀ तस्यैव हेतोः प्रयत्नेत कोविदो न लभ्यते यद् अभ्यतामुपर्यधः ।

तत्प्रम्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीरवहंसा ॥ (भा० १।१।१८)

+ अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि ।

अतो मयि रति कुर्वाद्देहादियत्कृते प्रियः ॥ (भा० ३।१।४१)

विशेष है। उस सामग्री द्वारा जीवका सिद्धदेह, बैकुण्ठधाम, भगवानका निवास स्थान, भगवत् विग्रह गठित उस चिद्देहमें इच्छा शक्ति युक्त होने से ही उस चित्पदार्थका धर्मरूप आनन्द परिचालित होता है। सन्धिनी से चिद्देह, सम्बन्धसे इच्छा और ह्लादिनीसे आनन्द आकर मिलने पर जीवका प्रकाश होता है। जीवका चिद्देह चिद्परमाणु स्वरूप है, जीवकी इच्छा सम्बन्धकण विशेष है, जीवका आनन्द ह्लादिनीका अत्यन्त क्षुद्र अंश है। यही जीव का स्वरूप है और यही जीवका धर्म है। ह्लादिनी से उल्लासरूप जप्तिलक्षण जीवमें प्रकाशित होने पर जीवके रतिधर्म का उदय होता है।

आनन्द, प्रीति, रति आदि पदों द्वारा वाच्य जो जैवधर्म है, वही जीवका स्वधर्म है।* मुक्त अवस्था में वह अकुण्ठ, विमल और अप्रतिहत है। जड़वद्धावस्थामें वह धर्म विकृत है। अतएव बद्ध जीवका स्वधर्म स्वरूपगत नहीं, बल्कि केवल सम्बन्धगत है। नीतिशून्य जीवनमें और निरीश्वर नैतिक जीवनमें वह स्वधर्म विषयरारूपमें विकृत है। उक्त त्रिविध जीवनमें विकृतिका कुछ परिमाणमें तार-तम्य है। वहाँ विपरीत विषयगत होनेके कारण

स्वधर्म नितान्त विपरीत आकार प्राप्त करता है। उत्तम बुद्धिवाले व्यक्ति उसे स्वधर्म न कहकर वैधर्म कहते हैं। नीति शून्य जीवनमें आहार, निद्रा, स्त्री सङ्ग आदि पाशवकार्य ही जीवके एकमात्र राग हैं। नैतिक व्यक्ति भी उसे वैधर्म कहते हैं। नैतिकोंका इन सभी विषयोंके प्रति राग चालित होता है, केवल कुछ परिमाणमें नियम की ओर ध्यान दिया जाता है। दूसरे शब्दोंमें नीतिशून्य व्यक्तिका चरित्र गहित पशु चरित्र है। नीतियुक्त निरीश्वर व्यक्तियोंकाका चरित्र उत्कृष्ट पशु चरित्र है। क्योंकि इन दोनों चरित्रोंमें ही जीवका स्वधर्म नितान्त विकृत है। वास्तविक ईश्वर विश्वासके साथ जो नैतिकजीवन स्वीकार करते हैं, उनका विषयरोग ईश्वर चिन्ताधीन होनेके कारण जीवका स्वधर्म इन स्थलमें विकृति त्यागोन्मुख हो उठता है। + वैध-भक्त जीवनमें ही स्वधर्म बहुत कुछ प्रकाशित होता है। × भावभक्त जीवनमें वह पूर्ण होता है। वर्णाश्रम धर्ममें और वैव भक्त जीवनमें जो सभी अधिकार विभाग हैं, उन-उन अधिकारगत निष्ठाओंके साथ जो परेश भक्ति है, उसीको स्वधर्म कहकर बद्धजीवोंके सम्बन्धमें कहा गया है। अर्जुनका युद्ध,

* पूर्त्तेन तपसा यज्ञैर्दानयोग समाधिना ।

राज्ञं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्त्वविन्मतम् ॥ (भा० ३।६।४०)

+ अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषाञ्चिदरहतामाः ।

इहामुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः स्वचिद्भुवः ॥ (भा० ४।२।१२५)

× तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैश्च कर्मभिः ।

असाधिनः कामदुःखाधिपङ्कजं यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥ (भा० ४।२।३३)

उद्धवजीका वैराग्यरूप वाणिक कर्मत्याग—वे सभी स्वधर्मके उदाहरण हैं। संक्षेपमें कहा जाय तो प्रीति ही शुद्ध जीवका स्वधर्म है और भक्ति ही बद्धजीव का मुख्य स्वधर्म है। कर्मादि सभी कुछ ही गौण स्वधर्म हैं। अर्थात् भक्तिके अधीन रहने पर अधिकार भेदसे स्वधर्म हैं और भक्तिके विपरीत आचरण करने पर बंधन रूपसे परित्याग्य हैं। जड़बद्ध रहने तक जीवका स्वधर्म शुद्ध नहीं होता। × प्रीति सम्पन्न व्यक्ति भी स्वधर्मको परिशुद्धरूपमें आलोचना करनेमें सफल नहीं होते। जड़मुक्त होने मात्रसे वही आलोचना विशुद्ध हो जाती है। स्वधर्मानुशीलनके द्वारा जीवका चित्स्वरूप और स्वधर्मरूप प्रीति दानों ही क्रमशः शुद्धता प्राप्त करते हैं।

पाँच प्रकारके फलानुभव

फलानुभव ही जीवके शुद्धज्ञानका चौथा प्रकरण है। फलानुभव पाँच प्रकारका है—(१) विकर्म-फलानुभव (२) अकर्मफलानुभव (३) कर्मफलानुभव। (४) ज्ञानफलानुभव और (५) भक्तिफलानुभव।

विकर्म

नीतिशून्य जीवन सर्वदा विकर्ममय है। पाप कर्मको विकर्म कहते हैं। अपना इन्द्रियसुख ही उस जीवनका एकमात्र तात्पर्य है। परलोक पर विश्वास इस जीवनमें नहीं रहता। ऐसे जीवनके द्वारा पीड़ा, अकालमृत्यु, अकारण बलवीर्यादिक्रय, मन की यन्त्रणा, अन्यान्य शास्त्रोंके अनुसार नरकादि गमन, अग्रश और सभीका अविश्वास प्राप्त होता है। इन कारणोंसे मरजीवन विषययन्त्रणा का विषय हो पड़ता है। थोड़ी भी बुद्धि रहनेसे ऐसा भयानक फल कोई भी स्वीकार नहीं करेंगे।

अकर्म

निरीश्वर नैतिकजीवन और कल्पित सेश्वर नैतिकजीवन सर्वदा ही अकर्ममय हैं। कर्तव्यकर्मके अकरणको अकर्म कहते हैं। नरजीवनमें जितने प्रकारके भी कर्तव्य कर्म हैं, उनमें परमेश्वरके प्रति कृतज्ञता स्वीकार पूर्वक उनकी उपासना वन्दनादि प्रधान कर्तव्य कर्म हैं। उनके अभावमें जीवन दूसरे प्रकारसे नैतिक होने पर भी अकर्म द्वारा दूषित

× इन्द्रियविषयाकृष्टेराक्षितं ध्यायतां मनः ।

चेतनां हरते बुद्धेः स्तन्वस्तोयमिव हृदात् ॥

भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ।

तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्लवमात्मनः ॥

नात परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ।

यदध्यन्स्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्लवो नृणाम् ।

अंशितो ज्ञान विज्ञानाद्देवाविशति मुख्यताम् ॥ (भा० ४।२२।२५-३१)

होता है नीति द्वारा शरीरादिकी रक्षा हो सकती है, किन्तु जब तक मनुष्य ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, तब तक वह कदापि सभी का विश्वासपात्र नहीं बन सकता। जिस हृदयमें ईश्वर विश्वास नहीं है, वह हृदय सूर्यशून्य जगत की तरह भयानक है। समय-समय पर उस हृदयमें अन्धकार का आश्रय कर महापातकरूपी पक्षियाँ घर निर्माण करती हैं। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है निरीश्वर व्यक्ति समस्त नीति पालन करके भी नरकमें गमन करता है। यही यथार्थ बात है। कल्पित सेश्वर नैतिक जीवन धूर्तता द्वारा सर्वदा असरल और पापमय है। उसका फल भी सहजमें अनुभव किया जा सकता है। जो व्यक्ति सरल रूपसे ईश्वरपर विश्वास कर नैतिक जीवनका पालन करते हैं, वे ही वर्णाश्रमाचारवान् हैं।*

भारतवर्षको छोड़कर दूसरे-दूसरे देशोंमें वह लक्षणसम्पन्न व्यक्ति वर्णाश्रम स्वीकार न करके भी उस धर्मके तात्पर्यनुसार जीवन निर्वाह करते हैं। व्यवहार स्थलमें देखा जाता है कि उच्चश्रेणी के व्यक्तियों पर अवलम्बन कर विधि की सृष्टि होती है, पश्चात् इस विधिके तात्पर्यको ग्रहणपूर्वक दूसरों

का कार्य चलता रहता है। भारतवासी आर्यश्रेष्ठ हैं। उन्हें लक्ष्य कर वर्णाश्रम विधिका निर्माण हुआ है। उस विधिके तात्पर्यके अनुसार दूसरी सभी जातियोंके व्यक्ति संसार निर्वाह करते हैं। जो कुछ भी हो, ईश्वर उपासना अन्यान्य कर्तव्य कर्मोंमें परिगणित होकर उनके जीवनको अकर्म और विकर्म से रक्षा करती है। वे जो कार्य करते हैं, वही कर्म है। उनके कर्मको कर्म ही कहा जाता है, दूसरे नाम से नहीं; क्योंकि वे कर्मको सबसे श्रेष्ठ तत्त्व मानते हैं। ईश्वर इन सभी कर्मोंका फल प्रदान करनेके लिए प्रस्तुत हैं। यहाँ ईश्वर भी कर्माङ्ग विशेष हैं। उन सभी कर्मों द्वारा ईश्वरको प्रसन्न करने पर वे स्वर्गवासादि फल प्रदान करते हैं। इस जीवनमें ईश्वर कर्मसे स्वाधीन नहीं हो सकते। अतएव ईश्वरानुगत्य सभी कर्मोंमें से एक कर्म है। उस कर्म द्वारा स्वर्गादि की प्राप्ति होती है। पुण्यकर्मके परिमाणानुसार स्वर्गादिफल भोग कर जीव पुनः कर्म क्षेत्रमें आकर कर्म करते हैं। × बार-बार कर्म और फल—इस चक्रमें जीव भ्रमण करते हैं। कर्मसे उद्धार प्राप्त करनेका कोई उपाय नहीं है, क्योंकि ऐसी निस्तारकी वासना भी इस मतानुसार एक

* इति मां यः स्वधर्मेन भजेन्नित्यमनन्यभाक् ।

सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्ति विन्दतेऽचिरात् ॥ (भा० ११।१८।४४)

× त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञं रिण्ट्वा स्वर्गंति प्राथयन्ते ।

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ (गीता ६।२०-२१)

पाप कर्मविशेष है। मतान्तरमें सभी जीव इस कर्म क्षेत्रमें जो सभी कर्म करते हैं, उनका विचार एक निर्दिष्टसमय पर होगा। - मृत्युके पश्चात् उस कालकी अपेक्षा कर रहना होगा। जिन्होंने अच्छा कर्म किया है, और अपने-अपने आचार्योंके अनुगत हैं, वे चिर-स्वर्ग प्राप्त करेंगे। इसके विपरीत जिन्होंने इन सभी आचार्योंको स्वीकार नहीं किया है या अच्छे कर्म नहीं किये हैं बल्कि बुरे कर्म किये हैं, वे चिरकाल नरकमें रहेंगे। ईसाई और मुसलमान—ये दोनों सेश्वरनैतिक सम्प्रदाय ऐसा विश्वास करते हैं। जहाँ ऐसा विश्वास हो, वह जीवन उच्चतर नहीं हो सकता। एक क्षुद्रजीवनमें जीव जो करते हैं, उसके द्वारा उन्हें अनन्त फल मिलता है। विशेषतः जन्म और सङ्गवशतः बाल्यकाल अर्थात् विवेक होनेके पहले से ही जो व्यक्ति पाप शिक्षा पाकर पापाचरण करते हैं, वे चिरनरकगमन रूप फल पाते हैं। उन्हें पुण्यशिक्षा करनेका अवसर नहीं मिला। इसके विपरीत सद्बंशजात बाल्यमें सत्संग प्राप्त व्यक्ति ने क्या अपना सामर्थ्य प्रकाश किया जो चिर स्वर्गलाभ किया? परमेश्वरके विचारमें ऐसा होने से दुर्बल जीवोंकी कहाँ गति होगी? इन सभी मतस्थ व्यक्तियोंका ईश्वर सम्बन्धीय अनुभव अति-शय संकुचित है, अतएव उनके मतानुसार कर्मफल

भी नितान्त अनुपयुक्त और तुच्छ है। संक्षेपमें कहा जाय तो सेश्वरनैतिक जीवन कर्ममय है। अकर्म और विकर्म तो नहीं है, किन्तु इस जीवनमें कर्मके तीन विभाग हैं—

(१) नित्य कर्म—सन्ध्यावन्दनादि।

(२) नैमित्तिक कर्म—श्राद्धादि।

(३) काम्यकर्म—पुत्रोष्ठियागादि।

सेश्वरनैतिकजीवनका दो गौण विभाग है अर्थात् नीच प्रकृतिजनित सेश्वरनैतिक जीवन और उच्च प्रकृतिजनित सेश्वर नैतिक जीवन। नीच प्रकृति सेश्वरनैतिक व्यक्ति नित्य नैमित्तिक कर्मकी अपेक्षा काम्यकर्मको अधिक स्वीकार करता है। उच्च प्रकृति सेश्वरनैतिक व्यक्ति काम्यकर्म मात्रको ही स्वीकार नहीं करते। नित्य नैमित्तिक कर्मको निष्कामरूपसे, कोई ब्रह्मार्पणके साथ, कोई भगवदपरायणपूर्वक स्वीकार करते हैं। ✽ इनमें से जो निष्काम कर्मी हैं, वे भी कर्मपर हैं। जो ब्रह्मार्पण-परायण हैं, उनका कर्म ज्ञानसीमाको प्राप्त किया है। जो भगवदपरायण हैं, उनका कर्म भक्ति सीमाको प्राप्त किया है। जो कर्म भक्तिसीमाको प्राप्त करता है, उस कर्मका फल ही भक्ति है, अतएव उसे गौणी भक्ति कहा जा सकता है। ✕ वैध भक्त उस अवस्थाके कर्मको जीवनयात्राका उपयोगी

+ Day of Judgement—Millennium.

* ब्रह्मण्याघाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पश्यन्नमिवाग्निमा ॥ (गीता ५.१०)

✕ नैव किञ्चित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।

पशवन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रसन् गच्छन् स्वपन् श्वमन् ॥

प्रलपन् विमृजन् गृह्णन्निमेषन्निमिषन्नपि।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ (गीता ५।८-९)

समझकर स्वीकार करते हैं। दूसरे सब प्रकारके कर्म ही अमङ्गलजनक हो सकते हैं। अर्थात् उनके कर्मफलका विश्वास नहीं है। जीवनधारणके लिए कर्म अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है, अतएव बद्धजीव सावधानीके साथ कर्मफल स्वीकार करेंगे।

कर्मकी दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ

ज्ञानफलानुभव विचारस्थलमें कुछ वक्तव्य है। शुद्ध ज्ञानका फल प्रेम है, अतएव उस फलका विचार यहाँ नहीं होगा। इन्द्रियार्थ ज्ञान, नैतिक ज्ञान, ईश्वरज्ञान और ब्रह्मज्ञान—इन चार प्रकारके ज्ञान-जनित फलोंका ही यहाँ विचार होगा। उनमें से इन्द्रियार्थज्ञान और नैतिक ज्ञानके सम्बन्धमें बहुत विचार हो चुका है। यहाँ ईश्वरज्ञान और ब्रह्मज्ञान फलकी ही कुछ विवेचना की जायगी। पहले कहा जा चुका है कि ईश्वरज्ञानसे कर्मकी कर्त्तव्यता निरूपित होती है। कर्मकी दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ हैं। फलभोग कराकर पुनः अपने अधीनमें जीवको लाकर कर्ममें प्रवृत्त कराना एक प्रवृत्ति है। ईश्वरको प्रसन्न कर शान्ति लाभ करना दूसरी प्रवृत्ति है। पहली प्रवृत्ति पहले ही विचारित हुई है। द्वितीय प्रवृत्तिसे ईश्वरज्ञानजनित कर्म क्रमशः जीवको उन्नति प्रदान करने की चेष्टा करता है, किन्तु वह देनेमें स्वयं अक्षम हो उठता है। अष्टांगयोग शास्त्रमें ईश्वरप्रणिधान द्वारा चित्त बशीभूत होने पर वह

कर्म अन्तमें कैवल्य प्रदान करगा—ऐसा भरोसा दी गई है। +

कैवल्य

उस कैवल्यका आकार देखनेसे ही वह मिथ्या मालूम होता है। पहले पातञ्जल शास्त्रमें कहा गया है कि क्लेश, कर्म, विपाक और आशयसे अपरामृष्ट पुरुषविशेष ही ईश्वर है। वह ईश्वर केवल-स्वरूप है। जीव भी योगक्रमसे उस कैवल्यको प्राप्त करता है। कैवल्य प्राप्त कर अनेक जीवोंका परस्पर क्या सम्बन्ध होता है और जिस ईश्वरकी बात सुनी थी, वे जीवोंके प्रति क्या करते हैं? अष्टांगयोगशास्त्रमें इस प्रश्नका उत्तर नहीं है। तब हमें क्या समझना चाहिए? हम क्या यह स्थिर करें कि ईश्वर एक कल्पित पुरुष विशेष है? साधनकालमें ही उनका प्रयोजन है, पश्चात् उनके साथ साक्षात्कार नहीं होगा। यदि ऐसा हो, तो जो सभी जीव कैवल्य प्राप्त करते हैं, वे, अनेक हों तो कैवल्य कंसे हुआ? यदि ऐसा सिद्धान्त हो कि ईश्वर एक अवस्थाविशेष है, जिस अवस्थामें जीव समूह लय प्राप्त होते हैं—यदि ऐसा हो, तो यह ईश्वर-सायुज्यवाद हुआ। यदि कहो कि इसमें दोष क्या है?—यह अद्वैतवाद का एक पृथक नाममात्र है। एकमतको दो नामोंसे प्रचार करनेकी आवश्यकता क्या है? योगकी फल-विभूति जिस प्रकार अनित्य समझी जाती है, उसी

+ यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ।

मुकुन्दसेवया यद्वत्तयाद्वात्मा न शाम्यति ॥ भा. १।२।३६

विद्यानपः प्राणनिरोधमेश्री तीर्थाभिपेक्षतदानजपैः ।

नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ भा. १।२।४८

प्रकार चरम फलरूप केवल्यको भी भक्तिविरुद्धवाद जानकर उपेक्षा करना ही कर्त्तव्य है । योगकी प्रतिज्ञा सुननेमें अच्छी होने पर भी फल अत्यन्त तुच्छ है । ईश्वरज्ञानजनित फल कहकर सालोक्य, साष्टि, और सामीप्य—इन तीनों मुक्तियोंको कहा गया है । ऐसी मुक्ति वास्तविक फल नहीं है, क्योंकि उसके द्वारा आखिरमें भगवत्सेवा ही होती है । उन सभी मुक्तियोंको सेवाद्वार कहकर किमी-किसी शास्त्रोंमें उल्लेख किया गया है । ईश्वरज्ञान यदि कृष्णभक्तिकी पुष्टि करें, तो उनका ईश्वरज्ञानस्वरूप शीघ्र शुद्धज्ञानरूपमें बदल जाता है । इससे ईश्वर-ज्ञान चरितार्थ होता है ।

ब्रह्मज्ञान और निर्वाण

पहले ही कहा गया है कि ईश्वरज्ञान कुपथगामी होकर ब्रह्मज्ञानरूपमें परिणत होता है । ब्रह्मज्ञानका फलरूप सायुज्य या निर्वाणमुक्ति नितान्त हेय है । निर्विशेष तत्त्वके रूपमें एक ब्रह्म स्थापन किया गया । निर्विशेषतत्त्वसे यही समझना चाहिये कि जितने प्रकारके अस्तित्व हो सकते हैं, उसका विपरीत तत्त्व ही निर्विशेष ब्रह्म है । अस्तित्वके विपरीत तत्त्वका सहन नाम नास्तित्व है । निर्वाण शब्दसे नास्तित्वको समझना चाहिये । ब्रह्मसायुज्य कहनेसे निर्वाण या नास्तित्वको समझना चाहिये । जो ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करनेका मतलब यही हुआ कि जीवका सर्वनाश हो गया । इसे क्या लाभ कहा जाय ? क्या इस फलके लिए यत्न करना उचित है ? अत्यन्त भगवदपराधके कारण कंस शिशु-पालादिने जो फल पाया, वह क्या शिष्ट लोगोंके लिये योग्य है ? अतएव ज्ञानफल अत्यन्त तुच्छ है । जो

व्यक्ति मुक्तिको ही ज्ञान कहते हैं, वे भी यह जानें कि ज्ञानफल नितान्त अकर्मण्य है । पहले ही यह दिखाया जा चुका है कि युक्ति जड़जगतके बाहर जानेमें समर्थ नहीं है । यदि कभी जानेकी चेष्टा भी करें तो केवल अपनी लक्षणावृत्तिकाका अवलम्बन कर करती है । इसके द्वारा प्रकृतिसे अतीत तत्त्वके विचारमें कोई फल प्राप्त नहीं होता । * कभी-कभी युक्ति निराश होकर नास्तिकताको प्रसव करती है । सन्देहवाद, नास्तिकवाद, जड़वाद, निर्वाणवाद आदि सभी वाद ही युक्तिके अनधिकार चर्चा द्वारा उत्पन्न होते हैं । अतएव ज्ञानफल सम्पूर्ण रूपसे जीवका अमंगलजनक है ।

भक्तिफलानुभव ही आखिरी फलानुभव है । भक्ति ही जीवका स्वधर्म है । स्वधर्मका फल ही स्वधर्म-उन्नति है, आश्रय - उन्नति है और विषयमें विशुद्धरूपसे अवस्थित है । स्वर्ग, मुक्ति, जड़शरीर, मन, बद्ध आत्माको विकृति और समाजकी उन्नति-इन सभीके सम्बन्धमें भक्तिका कोई मुख्यफल नहीं है । भक्ति अहेतुकी और जीवकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है । + भक्ति स्वयं उन्नत होकर प्रेमरूपी हो सकती है, यही भक्तिकी चेष्टा है । जड़बद्ध जीवको शीघ्र उस अवस्थासे स्वस्वरूपमें लाकर अपना कार्य पवित्ररूपसे सम्पादन करना—यही उसकी चेष्टा है । संक्षेप में कहा जाय तो भक्ति का फल केवल भक्ति ही है । जहाँ मुक्ति और मुक्तिकी स्पृहा हो, वहाँ भक्ति गुप्त हो पड़ती है । कर्म और ज्ञान भक्तिका आश्रय कर अपनी-अपनी प्रतिज्ञागत फल प्रदान करते हैं । किन्तु भक्ति स्वतन्त्रा है—स्वयं सभी फलदान करनेमें समर्थ होने पर भी स्वधर्म उन्नति को छोड़कर और कोई दूसरा फल नहीं देती ।

ॐ स्वल्पापि हचिरेव स्याद्भक्तितत्त्वावबोधिका ।

युक्तिस्तु केवला नैव यदस्या अप्रतिष्ठता ॥

यत्नेनापादितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमानृभिः ।

अभियुक्ततरन्वैरन्यार्थैर्बोपपद्यते ॥ (भक्तिरसामृतमिन्धु)

+ देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।

सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

भक्तों द्वारा मुक्तिका अनादर

का त्वं मुक्तिरुपागतास्मि भवतो कस्मादकस्मादिह
श्री कृष्णस्मरणेन देव ! भवतो दासीपदं प्रापिता ।
दूरे तिष्ठ मनागनागसि कथं कुर्यादनायं मयि
त्व गन्धान्निज नामचन्दनरसालेपस्य लोपो भवेत् ॥

(किसी भक्तके वचन)

किसी कृष्णनामनिष्ठ भक्तके सामने एक परम सुन्दरी स्त्री उपस्थित हुई। भक्तने उसे देखकर पूछा—अरी तू कौन है ? उसने उत्तर दिया—मैं मुक्ति हूँ और आपकी सेवामें उपस्थित हूँ। भक्त—आप हठात् यहाँ क्यों आई हो ? मुक्ति—हे देव ! श्रीकृष्णके स्मरणके प्रभावसे मैं आपके दासीपद को प्राप्त हुई हूँ। अतएव आप मुझे अपनी सेवामें रख लीजिए। यह सुनकर भक्त बोले—अरी ! दूर खड़ी रहो। मुझ जैसे नितान्त निरपराध व्यक्तिको भगवत्सेवासे विमुख कर क्यों अनर्थ कर रही हो ? तुम्हारी सुगन्धी मात्रसे मेरे नामरूपी चन्दनरस का लोप हो जायगा। अर्थात् तुम्हें स्वीकार करनेसे 'मैं भगवद्दास हूँ' ऐसा ज्ञान न रहेगा, और न सेवा करने की योग्यता ही रहेगी। और तो क्या ? मैं जो अपने उपास्य श्रीकृष्णके मधुर नामोंका कीर्तन कर रहा हूँ, वह कीर्तनानन्द भी कपूर की तरह उड़ जायगा। सो तुम कृपा कर मेरे सामने से दूर हट जाओ।

भवबन्धच्छिदे तस्य सृहयामि न मुक्तये ।
भवान् प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते ॥

(हनुमानजी के वचन)

भक्तप्रवर हनुमानजी कहते हैं—संसारके बन्धनको छेदन करनेवाली उस मुक्तिको मैं नहीं चाहता, जहाँ हे प्रभु ! आप स्वामी हैं और मैं दास हूँ, इस सम्बन्धका लोप हो जाय। अर्थात् आपकी सेवा-रहिता स्वरूप-नाशिनी मुक्ति को मैं नहीं चाहता।

भक्तिः सेवा भगवतो मुक्ति तत्पदलङ्घनम् ।
को मूढो दासतां प्राप्य प्राभवं पदमिच्छति ॥

(श्री शिवमौनीजी के वचन)

श्री शिवमौनीजी कहते हैं—श्री भगवानकी सेवाका नाम ही भक्ति है, और उनकी सेवा की अवज्ञा करना ही मुक्ति है। अतएव परम दुर्लभ भगवानकी सेवा को पाकर कोन मूढ़ व्यक्ति सायुज्य मुक्ति चाहेगा ? अर्थात् सायुज्यमुक्ति अत्यन्त तुच्छ और घृणित है।

(पद्यावली से संग्रहीत)

विरह-संवाद

श्रीमद्भक्तिविज्ञान आश्रम महाराज

गत ४ श्रावण, २१ जुलाई को जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके कृपा प्राप्त और प्राचीन संन्यासी शिष्य पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्विज्ञान आश्रम महाराज कृष्णा प्रतिपदाके दिन शेषरात्रिमें श्रीमायापुरस्थ श्रीचैतन्य मठमें श्रीहरिनाम स्मरण करते-करते सङ्गन अवस्था में परम धामको पधार गये। वे श्रीचैतन्य मठके वर्तमान रक्षक पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविलास तीर्थ महाराजके संन्यास-गुरु थे। उनकी आयु लगभग ८६ वर्ष की थी। कुछ दिनों से वे अस्वस्थता का अभिनय कर रहे थे। संकीर्तन करते-करते उन्हें श्रीचैतन्य मठसे श्रीयोगपीठमें ले जाया गया तथा श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी कृत श्रीसत्कियासारदीपिका के अन्तर्गत संस्कार दीपिका के अनुसार श्रीवास अङ्गनमें उनका समाधि संस्कार हुआ। उनके परलोकगमनसे गौड़ीय वैष्णवगण अत्यन्त विरह वेदना का अनुभव कर रहे हैं।

श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज

गत ५ कार्तिक, २३ अक्टूबर, कृष्णा पञ्चमीके दिन रात्रिके ८ बजे मथुरा धामस्थ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके कृपा-प्राप्त और प्राचीन संन्यासी श्रीमद् भक्तिकुशल नारसिंह

महाराज हरिनाम श्रवण करते-करते श्रीगुरु-गौराङ्ग का स्मरण करते हुए परमधाम को पधारे। वे श्री गौड़ीय वेदान्त समितिके एक सुयोग्य और प्रतिभा-सम्पन्न प्रचारक थे। वे श्रीभागवत पत्रिकाके प्रचार सम्पादक थे। काफी दिनों तक वे श्रीगौड़ीय पत्रिका के सम्पादक रह चुके थे। इनकी आयु लगभग ७६ वर्ष की थी। श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराजका सम्पूर्ण जीवन ही आदर्श सेवापूर्ण था। उनकी सेवा तथा कार्यकुशलतासे प्रसन्न होकर श्रील प्रभुपादजी ने उन्हें 'भक्ति कुशल' की उपाधि प्रदान की थी। वे श्रीचैतन्य महाप्रभु की वाणीके निर्भीक प्रचारक थे। जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्री श्रील सरस्वती ठाकुरके चरणोंमें उनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। श्रीप्रभु-पादजीके अप्रकट होनेके पश्चात् उन्होंने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और आचार्य ॐ विष्णु-पाद श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महा-राजके साथ योगदान कर श्रीगौर-वाणीका प्रचार करने लगे। उनके साथ-ही उन्होंने पूज्यपाद त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्ति रक्षक श्रीधर महाराजके निकट से शाखानुमोदित त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया था। तबसे वे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी विभिन्न प्रकारसे सेवा करने लगे। वे श्रील आचार्यदेवके दक्षिण हस्त जैसे थे।

इनका पूर्वाश्रम पूर्व बंगमें था। बचपनसे ही वे बड़े तेजस्वी और प्रतिभाशाली थे। ये अपनी पढ़ाई को समाप्त कर नवद्वीप आये और वहाँ श्रील प्रभु-

पादजी का आश्रय ग्रहण किया। कुछ दिन वहाँ रहकर फिर घर लौटे। थोड़े दिनोंके पश्चात् वे पुनः नवद्वीप आकर वहीं रहने लगे। तबसे वे आश्रममें ही रहे। काफी दिनों तक वे श्रीधाम मायापुरमें प्रकाशित 'श्रीनदीया प्रकाश' और 'श्रीगौड़ीय' के सम्पादक थे। उन्हें शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका प्रगाढ़ एवं अभूतपूर्व ज्ञान था। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ की स्थापनामें उन्हींका मूल हाथ था। श्रीभागवतपत्रिका भी उन्हींकी प्रेरणा और उत्साहसे प्रारम्भ की गई थी। उनकी सेवा-भावना और गुण अपूर्व थे।

श्रीपूज्यपाद नारसिंह महाराजजीके स्वधाम गमनसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका एक प्रधान स्तम्भ ही टूट गया है। उनके विच्छेदसे श्रीगौड़ीय वैष्णवगण और विशेषकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के सदस्यगण अत्यन्त क्लेश और अभावका अनुभव कर रहे हैं। उनकी गुरु-निष्ठा, सेवा-परायणता और हरिकथा प्रचारका आदर्श-इनसे अनुप्राणित होकर हम भी अपनी जीवन की शेष घड़ियोंको श्रीहरि-गुरु वैष्णवकी सेवामें नियुक्त कर सकें और हरिभजन उत्साहपूर्वक करनेका बल प्रदान करें—यही उनके चरणोंमें हमारी कातर प्रार्थना है।

श्रीभक्तिसर्वस्व गिरि महाराज

गत १६ कार्तिक, ३ नवम्बर, शुक्ला प्रतिपदा के दिन रातके ८ बजे वृन्दावनस्थ श्रीरामकृष्ण सेवाश्रममें ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी के कृपा प्राप्त और प्राचीन संन्यासी शिष्य पूज्यपाद त्रिदण्डस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज हरिकीर्तनके मध्य श्रीगुरु गौराङ्गता

स्मरण करते-करते स्वधाम को प्रयाण कर गये। ये जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील सरस्वती ठाकुर के परम कृपा प्राप्तमें से एक थे। इन्होंने आमरण श्रील प्रभुपादजी की सेवा और उनकी वाणीके प्रचारमें ही अपने जीवनको विसर्जन कर दिया था। श्रील प्रभुपादजी के आदेशसे इन्होंने भारतके विभिन्न स्थानोंमें तथा वर्मा स्थान आदि देशोंमें भी प्रचार किया था। वे बड़े ही निर्भोक्त, ओजस्वी और स्पष्ट वक्ता थे। श्रील प्रभुपादजी के अन्तरङ्ग कार्योंका सम्पादन वे बड़ी कुशलता और दक्षतासे करते थे। विजय श्री सर्वदा ही इनके साथ थी। इनकी आयु लगभग ६८ वर्ष की थी।

ये अत्यन्त अल्प वयस ही से श्रील प्रभुपादजीके आश्रित हुए थे। तबसे ही इन्होंने श्रील प्रभुपादजीकी सेवामें तथा श्रीगौर-भक्तिविनोद वाणीके प्रचारमें अपनेको समर्पण कर दिया। श्रील प्रभुपादजी से विधिवत् शास्त्रानुमोदिन त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण कर बड़े ही धुमुल रूपसे हरिकथा प्रचार करने लगे।

श्रील प्रभुपादजी के अप्रकट-लीला आविष्कार के पश्चात् वे सर्वत्र भ्रमण कर प्रचार करने लगे। इन्होंने श्री गौर-विनोद वाणी आश्रम की स्थापना की। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य श्री ॐ विष्णुपाद श्री श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध और मैत्री-पूर्ण व्यवहार था। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके ये प्रधान सहायक थे और समितिके सभी कार्योंके प्रति इनकी विशेष सहानुभूति थी। समितिके सभी सेवकों पर इनकी अपार कृपा-दृष्टि थी।

इनकी सहज-वैष्णवता, उदारता और अमायिक तथा निष्कपट व्यवहार चिरस्मरणीय हैं। इनका स्वभाव बड़ा ही सरल था। इसी कारणसे वे अपने सतीर्थ गुरु भ्राताओंके अत्यन्त आदरके तथा प्रेमके पात्र हुए थे। ये वास्तवमें बड़े ही निकृचन थे। इन्होंने संग्रह करना अपने जीवनमें कभी सीखा ही नहीं। ये बड़े ही भजन परायण और परम वैराग्यवान् थे। जीवनके अन्तिम समयमें उन्होंने अस्वस्थताका अभिनय किया था जो जनसाधारण की दृष्टि में मोहजनक था। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीके सत्क्रियासारदीपिकाके अनुसार पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिहृदय वन महाराजके देखरेखमें

उनका समाधि संस्कार सम्पन्न किया गया। पूज्यपाद श्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरि महाराजके परलोक गमनसे गौड़ीय वैष्णव जगतने अपने एक अपूर्व नक्षत्रको खो दिया है, जिसका मूल्य पूर्ति करना असम्भव है उनके विच्छेदसे उनके सतीर्थ गुरु भ्राता-यण विशेषकर अस्मदीय श्रील गुरुपादपद्म विशेष अभाव और क्लेशका अनुभव कर रहे हैं। अन्तमें हमारी उनके श्रीचरणोंमें यही कातर प्रार्थना है कि वे अपना गुरु-निष्ठा, एकान्त सेवा परायणता, भजन परायणता, और श्रीगौर-विनोद वालीकि प्रचारके आदर्शसे हमें अनुप्राणित करें और हरिभजन करने के उपयुक्त बल प्रदान करें।

प्रभुसे दैन्यमयी प्रार्थना

मोसों पतित न और गुसाईं ।
 अवगुन मोपें अजहुँ न छूटत, बहुत पच्यो अब ताईं ॥
 जनम-जनम तैं हौं भ्रमि आयी, कपि गुंजाकी नाईं ।
 परसत सीत जात नहिं क्यौंहु, लै-लै निकट बनाईं ॥
 मोह्यी जाइ कनक-कामिनी रस, ममता मोह बढ़ाई ।
 जिह्वा-स्वाद मीन ज्यौं उरभ्यो, सूभी नहीं फँदाई ॥
 सोवत मुदित भयो सपने में पाई निधि जो पराई ।
 जागि परें कछु हाथ न आयी, यो जगकी प्रभुताई ॥
 सेए नाहिं चरन गिरिघरके, बहुत करी अन्याई ।
 सूर पतित कौं ठौर कहैं नहिं, राखि लेहु सरनाई ॥

श्रीदामोदरव्रत और श्रीश्रीअन्नकूट महोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठोंमें अन्यान्य वर्षोंको तरह इस वर्ष भी श्रीचातुर्मास्य व्रत और उसके अन्तर्गत १ कार्तिक, वृहस्पतिवारसे लेकर ३० कार्तिक, शुक्रवार तक श्रीदामोदर व्रत नियम सेवाका अनुष्ठान विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ है। दामोदर व्रतके उपलक्ष्यमें सर्वत्र ही एक मास तक विधिपूर्वक समारोहके साथ श्रीविग्रह सेवा-पूजा श्रीमद्भागवत और श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ग्रन्थोंका पाठ, प्रवचन, संकीर्तन और भाषण हुए हैं। इस अनुष्ठानके अन्तर्गत सर्वत्र ही १६ कार्तिक शुक्रवारको श्रीगोवर्द्धन-पूजा और अन्नकूट महोत्सव और २५ कार्तिक, रविवारको उत्थान एकादशीके दिन श्रीश्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका विरह महोत्सव आदि विशेष समारोह पूर्वक सम्पन्न हुए हैं।

समितिके मूल-मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें और अन्यान्य शाखामठोंमें भी यह महोत्सव बड़े समारोहपूर्वक वृहदाकारमें सम्पन्न हुआ है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें श्रीपरमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवकी उपस्थितिके कारण इस वर्ष यह व्रतोत्सव अन्यान्य वर्षोंकी अपेक्षा अधिक उत्साह तथा समारोहपूर्वक सन्पन्न हुआ है। अन्नकूट महोत्सवके अवसर पर आयोजित धर्म सभामें परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने अन्नकूट महोत्सवका माहात्म्य और भक्ति

तत्त्वके निगूढ़ सिद्धान्तोंपर प्रकाश डालते हुए बड़ा ही मार्मिक भाषण दिया। तदनन्दर उपस्थित जनसमुदायको श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीका विविध प्रकारका सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा और श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रील आचार्यकी हरिकथा

गत १६ अक्टूबर, वृहस्पतिवारको श्रीश्रील आचार्यदेवकी आज्ञानुसार श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति की ब्रजमण्डल परिक्रमा पार्टी हावड़ा (कलकत्ता) से रेलगाड़ीके संरक्षित शयन-कक्षवाले डिब्बेसे यात्रा कर २० अक्टूबर शुक्रवारको मथुरा धाममें पहुँची। इसके पूर्व आसाम से कुछ यात्रियोंको लेकर श्रीपाद माधवदास ब्रह्मचारी और श्रीपाद विश्वरूप ब्रह्मचारी मथुरा पधारे हुए थे।

पूज्यपाद श्रीमद् भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज के नेतृत्वमें परिक्रमा पार्टी बहिगत हुई। २१ अक्टूबरसे लेकर ४ नवम्बर तक श्रीमथुराकी पञ्चक्रोशी परिक्रमा, उसके अन्तर्गत कृष्णजन्मस्थान, दीर्घ विष्णु, आदिवराह, अनन्त पद्मनाभ, विश्राम-घाट आदि, मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, गोवर्द्धन, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, कुसुम सरोवर, काम्यवन, नन्दगाँव, साकेत, जावट, खैर, बरसाना, कदम्बखंडी, कदम्ब टेर, उद्धव बयारी, वृन्दावन,

श्रीवन, मानसरोवर, गोकुल महावन, ब्रह्माण्डघाट, लौहवन, भण्डीरवन, ब्रह्माण्ड घाट, श्रीबलदाऊजी तथा श्रीराधारानीजीकी आविर्भाव स्थली रावल का दर्शन और परिक्रमा कर ४ नवम्बरको श्रीकेशव जी गौड़ीय मठमें पहुँची और एक दिन विश्राम कर ६ नवम्बरको वहाँसे यात्रा कर रास्तेमें प्रयाग, वाराणसी, और गया आदि तीर्थोंका दर्शन और परिक्रमा करती हुई कलकत्ता होकर नवद्वीप लौट गयी । परिक्रमाके दिनों श्रीश्रील आचार्यदेव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा ही में थे । उनके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज, श्रीहरिसाधन ब्रह्मचारी, श्रीमाधवदास ब्रह्मचारी आदिने बड़ी तत्परता और उत्साहसे परिक्रमा पार्टीका बड़े ही सुन्दररूपसे संचालन किया । इस वर्ष खड्गपुर श्रीगौर वाणी आश्रमके अध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराजने भी अपनी पार्टीको लेकर इस परिक्रमामें योगदान किया था ।

श्रीश्रील आचार्यदेवकी उपस्थिति कालमें उनके श्रीमुखारविन्द विगलित श्रीकृष्णलीला कथामृतका

पान करनेके लिए शहरके विशिष्ट शिक्षित और श्रद्धालु सज्जन मण्डली उपस्थित होती थी । इन सज्जनोंमें से श्री शिव नारायण अग्रवाल कॉलेजके प्रधानाचार्यजी, श्रीकेदारदत्त तत्राडी (चम्पा अग्रवाल कॉलेजमें हिन्दी विभागके शिक्षक), श्रीगजाधरप्रसाद सक्सेना (सेवा योजना अधिकारी) आदिके नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं । हरिकथाके माध्यमसे श्री श्रील आचार्य देवने विभिन्न दार्शनिक मतवाद, वैष्णव सम्प्रदाय और उनके दार्शनिक सिद्धान्त, मायावाद या केवलाद्वैतवादकी अकर्मण्यता, शब्द ब्रह्मका तात्त्विक विश्लेषण, स्वयं भगवान श्रीकृष्ण का दूसरे अवतारोंसे वैशिष्ट्य, आत्माकी नित्यता और अखण्डता आदि आदि विषयों पर बड़ा ही चमत्कारपूर्ण सिद्धान्तोंका रहस्योद्घाटन किया । उनके ठोस-प्रमाण और अकाट्ययुक्ति सभी श्रोताओं को मुग्ध कर देती थी ।

इसके पश्चात् कुछ अस्वस्थता बोध करनेके कारण श्रीश्रील आचार्यदेव ११ नवम्बर, शनिवार को श्रीमथुराधामसे प्रस्थान कर हावड़ा (कलकत्ता) पहुँचे । आजकल वे कलकत्तामें ही विराजमान हैं ।

प्रचार-प्रसङ्ग

श्रीश्रील आचार्यदेवका आसाममें शुभ पदार्पण

गत ६ ज्येष्ठ, २१ मई, रविवारको श्री श्रील आचार्यदेव पूज्यपाद श्रीवामन महाराज, श्रीपाद मुकुन्दगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीपाद दयालहरि ब्रह्मचारी, श्रीमदनमोहन ब्रह्मचारी, श्रीराधामाधव ब्रह्मचारी, और श्रीसनत्कुमार ब्रह्मचारी को लेकर श्रीधाम नवद्वीपसे रवाना होकर ७ ज्येष्ठ, २२ मई सोमवारको आसामके श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें पधारे ।

११ ज्येष्ठ, शुक्रवारको श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें एक महती सभाका आयोजन किया गया । उसमें अनेकों शिक्षित व्यक्ति उपस्थित हुए । इस सभामें पूज्यपाद श्रीमद् वामन महाराज, पूज्यपाद श्रीमद् उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीपाद गजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी, श्रीपाद मुकुन्दगोपाल ब्रह्मचारी और श्रीपाद नरोत्तमानन्द दासाधिकारी आदि वक्ताओंने भाषण दिए ।

१२ ज्येष्ठ शनिवारको स्थानीय बी. टी. कॉलेज के प्रधानाचार्य श्रीगुरुनाथ शर्मा और एम. एल. ए. श्री भुवन प्रधानी आदि सज्जनोंकी चेष्टासे एक धर्म सभाका आयोजन हुआ । इस सभामें पूज्यपाद उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीगुरुनाथ शर्मा, श्रीभुवन प्रधानी और पूज्यपाद वामन महाराज आदि वक्ताओंने भाषण दिया ।

गोलाकगंजसे श्रील आचार्यदेव वासुगाँवमें पधारे । वहाँके स्थानीय माननीय सज्जन श्रीयुत पार्वती बाबू द्वारा प्रदत्त भूमिमें "श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ" की स्थापना की गई । इस मठकी स्थापनामें श्रीयुत विश्वरूप ब्रह्मचारीका ही मूल कर्तृत्व है । उनकी सेवा-प्रवणता और उत्साह को देखकर श्रील आचार्यदेवने उन्हें उक्त मठका रक्षक नियुक्त किया है । श्रीयुत पार्वती बाबू एक विशिष्ट ठेकेदार थे । वे साल भर से ही मठ-स्थापना के लिए श्री श्रील आचार्यदेवसे अनुरोध कर रहे थे ।

यहाँ २५, २७, और २८ ज्येष्ठको तीन दिन विराट धर्मसभा का आयोजन किया गया । श्रीश्रील आचार्यदेवने उक्त सभाओंमें सभापतित्व ग्रहण किया । उन्होंने अपनी निर्भोक्त और वज्रघोष तुल्य वाणीसे श्रीमन्महाप्रभुके शिक्षाओं पर प्रकाश डाला । श्रीश्रील आचार्यदेवके अलावा पूज्यपाद श्रीमद्-वामन महाराज, पूज्यपाद श्रीमद् उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीपाद विश्वरूप ब्रह्मचारी, श्रीपाद रमापति दासाधिकारी आदि वक्ताओंने वक्तृता प्रदान किया । वहाँ से ५ आषाढ़, २० जूनको श्रीश्रील आचार्यदेव ने बिहार प्रान्तके अन्तर्गत सिउड़ी नगरके लिए प्रस्थान किया ।

सिउड़ीमें श्रीश्रील आचार्यदेवका शुभागमन

सिउड़ी के स्थानीय सज्जन चाँदनी पाड़ाके

निवासी श्रीयुत उमापद साधु महोदयके विशेष आह्वान से श्रीश्रील आचार्यदेव २१ जून को सिउड़ी में पधारे। श्रीश्रील आचार्यदेव के उपस्थिति कालमें वहाँ के स्थानीय शिक्षित व्यक्तियोंने श्रीश्रील आचार्यदेवके श्रीमुख विगलित वीर्यवती और ओजस्विनो वाणी का श्रवण किया। उनके दार्शनिक तत्वज्ञान और विचारपूर्ण उपदेशोंको सुनकर वे अपने आपको कृतार्थ और सौभाग्यवान समझने लगे।

२४ जून शनिवारको स्थानीय शिक्षकों और न्यायकोविदोंके विशेष आग्रहसे परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने स्थानीय 'बार लाइब्रेरी' में रात ६ बजे से १० बजे तक सारगर्भित भाषण दिया। उन्होंने वक्तृता द्वारा यह बतलाया कि न्याय जाननेवालोंका क्या कर्त्तव्य है और किस प्रकार अन्यायपूर्ण दुर्नीति सारे देशको अधःपातित कर रही है। उन्होंने कहा कि ऐसी दुर्नीतिको दूर करना अत्यन्त आवश्यक है और शिक्षा की धारामें सम्पूर्ण संशोधन वाञ्छनीय है। न्याय शासन की शृंखला को बनाये रखने के लिए धार्मिक चिन्ता धारा और आदर्शवाद का विशेष प्रयोजन है। निरीश्वर शिक्षा से जगत की अधोगति हो रही है। अतएव इस

दुरास्थासे उद्धार पानेके लिए प्राचीन ऋषियों की शिक्षा में प्रतिष्ठित और शिक्षित होना आवश्यक है। उनको ऐसी वक्तृता को श्रवण कर सभी व्यक्ति अत्यन्त आकृष्ट हुए।

इसके पश्चात् २५ और २६ जूनको दो दिन स्थानीय जिला पुस्तकालय (District Library) में श्रीश्रील आचार्यदेवने "वर्त्तमान परिस्थिति और सनातन धर्म" "वैष्णव साहित्य और संस्कृति" के सम्बन्धमें रात ७ बजे लेकर ९ बजे तक अपनी ओजस्विनो और सारयुक्त वाणी द्वारा भाषण दिया। उन्होंने बड़े ही हृदय मनोमोही शब्दोंसे अनित्य धर्म के साथ सनातन धर्मका पार्थक्य और सनातन धर्म वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला। वक्तृताके अन्तमें जिला पुस्तकालय की ओर से श्रील आचार्यदेव की सम्बर्द्धना की गई और पुस्तकालयके अध्यक्ष ने यह कामना प्रकट की कि उन्हें सब समयके लिए ही श्रीश्रील आचार्यदेवकी सुसिद्धान्तपूर्ण वाणी श्रवण करनेका अवसर मिले। श्रीश्रील आचार्यदेव कुछ दिन और वहाँ रहकर सदलबल श्रीनवद्वीप धामको लौटे।

—निजस्व संवाददाता